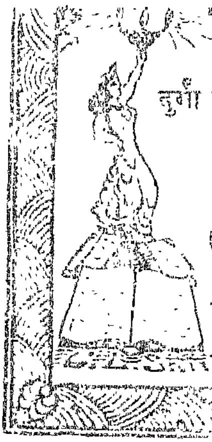


मेरी कालिज डायरी

धीरेन्द्र वर्मा

साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण : १९५८ ईसवी

मूल्य एक रुपया पचास नये पैसे

मुद्रक : हिन्दी साहित्य प्रेस, इलाहाबाद

अपने

अनन्य मित्र और साथी

बाबूराम

को

सस्नेह

परिचय

डायरी रखने की मेरी आदत स्कूल के दिनों में आरंभ हो गई थी। यह आदत कैसे शुरू हुई यह अब मुझे ठीक याद नहीं। शायद पिता जी की हिसाब रखने की डायरी (जो मद्रास से प्रतिवर्ष उनके पास आया करती थी) देख कर मुझे भी उनकी नक़ल करने की इच्छा हुई हो। डायरी रखने में कदाचित् कुछ आत्म-महत्व का अनजाने आभास होता था।

१९१४ ई० में हाई स्कूल पास करके म्योर सेंट्रल कालेज इलाहाबाद इंटर पढ़ने भेजा गया था और वहाँ हिन्दू बोर्डिंग हाउज़ में रहता था। तब से अधिक नियमित रूप से डायरी रखने का अभ्यास हुआ। किन्तु आरंभ की उस डायरी का रूप कुछ निम्नलिखित सा था :—

'छः बजे से पहले उठा। सुबह तीन घंटे पढ़ा। दिन में पाँच घंटे पढ़ा। शाम को टेनिस खेले थे। संध्या को नित्य पार्क जाने लगा हूँ। आँखें ठीक न होने के कारण रात में बिलकुल नहीं पढ़ा। नौ बजे सो गए थे।'

१९१६ ई० में बी० ए० में आया। यह समय १८ वर्ष का हो चुका था। यह वह उम्र होती है जब व्यक्ति किशोरावस्था से युवावस्था में प्रवेश करता है। इस उम्र में प्रत्येक नवयुवक के जीवन में भारी शारीरिक तथा मानसिक उथल पुथल आरंभ होते हैं। मैं इसका अपवाद नहीं था। अतः उपर्युक्त प्रकार की दैनिक डायरी की खानापूरी अब संतोष नहीं दे पाती थी। मन में अनेक प्रकार के तूफान उठते थे, संदेह पैदा होते थे, व्यक्तिगत समस्याएँ सामने आती थीं, और ये सब अंदर ही अंदर घुटती थीं। आरंभ से ही चुप्पे

स्वभाव का होने के कारण कोई ऐसा मित्र नहीं बना सका था जिसके सामने इन सब को रख कर हृदय का भार कुछ हल्का कर पाता।

ऐसी स्थिति में मैंने मार्च १९१७ से एक पृथक् कापी रखनी शुरू की जिसमें मन की उलझनें और अंतरंग बातें स्पष्टतया लिख सकूं। दैनिक डायरी के समान इस कापी में नित्य नहीं लिखता था, बल्कि जब कभी विचारों के तूफान उठ कर बवंडर का रूप धारण करने लगते थे तभी उन्हें लिख कर मन को शांत कर लेता था। लिखने के बाद ऐसा मालूम होता था जैसे अपने किसी अत्यंत घनिष्ठ मित्र से मन की गुप्त बातें कह के आदमी हलकापन अनुभव करता हो। यह सिलसिला लगभग सात वर्ष तक चलता रहा।

प्रस्तुत प्रकाशन कालेज के दिनों की मेरी इसी दूसरी डायरी के कुछ चुने हुए अंशों का सम्पादित रूप है। इसमें अनेक अत्यंत व्यक्तिगत अंशों को छोड़ दिया गया है तथा कहीं कहीं क्रम आदि में भी सुधार किया गया है, नहीं तो यह ठीक उसी रूप में है जिसमें यह मेरे इंटर से डी० लिट्० स्कालर रहने के दिनों तक १९१७ से १९२३ ई० के बीच में लिखी गई थी। व्यक्तिगत होते हुए भी यह डायरी किसी भी संवेदनशील, आदर्शवादी, किंतु संकोची १८, १९ से २५, २६ वर्ष तक की आयु के नवयुवक के हृदय का चित्र हो सकता है। व्यक्तिगत अंशों को भी इसी रूप में देखा जा सकता है—'यत्पिंडे तत् ब्रह्मांडे।'

इसके प्रकाशित करने में मुझे कुछ संकोच हो रहा था। इसलिए नहीं कि युवावस्था की मेरी मानसिक निर्बलताओं का संसार के सामने प्रदर्शन होगा, बल्कि इसलिए कि मेरे जीवन से संबंध रखने वाले अनेक अन्य व्यक्तियों का इसमें उल्लेख है, जिनमें से अधिकांश सौभाग्य से अभी भी मेरे जीवन की परिधि के बाहर नहीं निकले हैं, अथवा मैं उनके जीवनों की परिधि के बाहर नहीं निकल पाया हूँ। उनके संबंध में इन लगभग ४० वर्ष पुराने विचारों को प्रकाशित

करने में कुछ अनौचित्य का भान होता है। संभव है ऐसा करना सुरुचिहीन तथा अशिष्ट समझा जावे, किन्तु विश्वासघात की श्रेणी में तो इसे नहीं रक्खा जा सकता, क्योंकि मैं उनके संबंध में अपने ही पुराने गुप्त विचारों को प्रकाश में ला रहा हूँ, उनकी विश्वास में में कही किसी बात को तो नहीं प्रकट कर रहा हूँ। फिर दो पीढ़ियों बाद इन बातों में अब ऐसा जीवित व्यक्तिगत पहलू भी नहीं रह गया है जो किसी के मन को वास्तव में ठेस पहुँचा सके। यह तो अब एक पुरानी कहानी मात्र है। तो भी अपने जीवन नाटक के उन मुख्य पात्रों को, जिनका इस डायरी में उल्लेख हुआ है, मैंने अनुमति प्राप्त कर ली है।

यह डायरी मेरे मानसिक जीवन के लगभग सात मूल्य वर्षों का सच्चा आत्मचरित है, जो आज नहीं लिखा जा रहा है बल्कि उसी कच्चे-पक्के रूप में है जिसमें यह तभी लिखा गया था जब मैं कालिज का एक साधारण विद्यार्थी था और यह नहीं जानता था कि जीवन की नदी के थपेड़े मुझे किधर ले जायँगे। इसकी अपूर्णता और सचाई में ही इसका महत्व है। यदि शेप आत्मचरित किसी रूप में कभी लिखा गया तो वह जीवन का सिंहावलोकन मात्र होगा। वह अधिक प्रौढ़, परिमार्जित और परिपक्व हो सकता है, किन्तु उसमें मन के इस कच्चेपन और गदरेपन का आनन्द नहीं प्राप्त हो सकेगा जो इस डायरी में मिलेगा। पाठकों से अनुरोध है कि वे इसे "हिन्दी के प्रकांड विद्वान् और भाषाशास्त्र के पंडित" प्रोफेसर धीरेन्द्र वर्मा की कृति समझ कर न पढ़ें, बल्कि इसमें स्वयं अपने जीवन की १८ से २४ वर्ष तक की मानसिक स्थिति की परछाईं देखने का यत्न करें। सचाई यह है कि इससे अधिक अथवा भिन्न इसका महत्व नहीं है।

प्रयाग, १९५७

—धीरेन्द्र वर्मा

विषय सूची

खंड १—संदेह
(१६१७-१६)

खंड २—संसार
(१६१६-२१)

खंड ३—देश-दशा
(१९२१-२२)

खंड ४—माया-जाल
(१९२२-२४)

खंड १

संदेह

(१६१७-१६१६)

१. सत्य क्या है ?

सत्य क्या है अथवा सबसे उत्तम मार्ग कौन सा है, यह विचार पिछले मास बारबार मन में उठा किन्तु निश्चय कुछ भी न कर सका। संसार में इतने बहुत से धर्म हैं इससे ही मालूम होता है कि सत्य का जानना कितना कठिन है।

एक ओर एक बूढ़ा मनुष्य जनेऊ पहने, माथे पर चन्दन लगाए, स्नान करके, कुशासन पर बैठा गायत्री का जाप कर रहा है। दूसरी ओर जूते और कपड़े पहने गिरजाघर में खड़ा हुआ एक मनुष्य आँखें मूंदकर ईसा मसीह से पापों को क्षमा करने की प्रार्थना कर रहा है। तीसरी जगह बकरे को मार कर झटपट हाथ धो, कंधे पर के सुर्ख अंगोछे से मुँह पोछ, मुल्ला साहब मसजिद में घुटनों के बल बैठे हुये 'या मोहम्मद रसूल अल्लाह' श्रद्धापूर्वक कह रहे हैं। इनमें कौन ठीक है?

ऐसा मालूम होता है कि दुनिया में सत्य और झूठ कुछ भी नहीं है, अथवा एक ही बात सच्ची और झूठी दोनों हो सकती है। जिन बातों को बचपन से सत्य और उत्तम कहके बताया जाता है उन्हें लोग अच्छा समझते हैं, और जिन्हें झूठ और खराब बताया जाता है उन्हें बुरा समझते हैं। जैसे एक आदमी कच्चे मांस को देखकर घृणा के कारण मुँह फेर लेता है, किन्तु दूसरा आदमी उसी को मुँह में पानी भर कर टकटकी लगाकर देखता है। क्या यह ऊपर के मत का काफी प्रमाण नहीं है। फिर इनमें कौन ठीक है ?

कुछ विद्वानों ने सत्य और असत्य को जानने के लिए बहुत परिश्रम के बाद कुछ सिद्धान्त रचे हैं, किन्तु ये भी अलग

अलग हैं। एक कहता है कि जो आँख से दिखाई दे वह अवश्य है, किन्तु दूसरी ओर धुरन्धर विद्वानों की एक मंडली कहती है कि जो कुछ दिखाई पड़ता है वह सब भ्रममात्र है। हद हो गई! कैसे पता चले कि इनमें कौन ठीक है?

खैर, आगे चलिए। एक आदमी ईश्वर को मानता है, दूसरा इस विचार की हँसी उड़ाता है। यह नहीं है कि देश अथवा काल के कारण यह कठिनाई पड़ती हो। एक ही घर में चार आदमी बिलकुल अलग-अलग ख्याल के मिलेंगे। फिर पता कैसे चले कि इनमें ठीक कौन है?

५-३-१९१७

२. जीवन

ऐसा भी जीवन क्या जो परिमित करके अपने ही सुख चैन में कट जाय, न संसार उसे जाने न वह संसार को। जब तक लाखों आदमियों का नायक न हो, जब तक दो चार राष्ट्रों का आधार न हो, जब तक काल के अनन्त समय में क्षण भर को भी याद न रक्खा जाय तब तक जीवन व्यर्थ है।

जब मृत्यु के साथ ही इस जीवन के कार्यों की समाप्ति है तब क्यों न बड़े बड़े कार्यों को हाथ में लिया जाय? अगले और पिछले जन्मों से सम्बन्ध इतना कम है कि उनको मान कर हमें अधिक लाभ नहीं हो सकता। हम अपने इस जन्म के कार्यों को अगले जन्म के कार्यों से नहीं मिला सकते, फिर उसे मानने से लाभ ही क्या? हाँ दुर्बल आत्माओं को भयभीत रखने की यह अच्छी युक्ति अवश्य है?

चाँद के लिए व्यर्थ रोना मिट्टी के खिलोनों से खेलते रहने से कहीं अधिक उत्तम है।

× × ×

मेरा जीवन मेरे लिए एक बड़ी समस्या हो गई है। पता नहीं इसका अन्त किस प्रकार का होगा, आरम्भ तो बहुत आशा पूर्ण था। कदाचित् ऐसा सब मनुष्यों के जीवनों में होता है।

इस एक बात का तो क़रीब क़रीब मुझे निश्चय सा हो गया है कि जीवन को जिस ओर डाले उस ओर उसे सबसे आगे रखना ही जीवन का उद्देश्य होना चाहिए। किन्तु जीवन

को केवल एक ओर डालना भी भूल है। संसार को जिस प्रकार के मनुष्य चाहिए उनमें प्रायः अनेक बातों का मेल होना चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कुछ महान् आत्माएँ केवल एक कार्य को हाथ में लेकर संसार में विजय दुंदभी बजा गई हैं। किंतु यह साधारण नियम नहीं है।

एक विद्यार्थी के जीवन को बनाने में बहुत ही होशियारी की जरूरत है। इस आशा पूर्ण जीवन की नींव डालना माता पिता के हाथ में होता है। उद्देश्य रहित जीवन दुखमय होता है, अतः माता पिता का प्रथम कर्त्तव्य अपने बच्चों को उनके जीवनोद्देश्य के चुनने में सहायता देना है। इस एक बात पर जितना बल देना चाहिए उतना नहीं दिया जाता है। रोटी कमाने के सवाल के मौजूद रहने पर भी वास्तविक जीवनोद्देश्य निश्चित किया जा सकता है। अपनी रुचि वाली रोटी कमाने की विधि भी सम्भव है।

दूसरी बात बालकों को संसार में सफल होने का उपाय बतलाना है। यह मैं पहले ही कह चुका हूँ कि यदि संसार में आदर के साथ जीवन यापन करना है तो सफल मनुष्य बनने का अवश्य यत्न करना चाहिये। विद्यार्थी जीवन केवल पुस्तकमय नहीं है। उसके अनेक पहलू हैं, जिनका जानना और सफलता प्राप्त करना संसार में मान प्राप्त करने के लिए नितान्त आवश्यक है।

× × ×

अपने होस्टेल के इस वर्ष को आरम्भ करते हुए डाक्टर तेजबहादुर सपरू ने कुछ बहुत अच्छी नसीहतें दीं। उन्होंने प्रत्येक विद्यार्थी के होस्टेल के जीवन के दो पहलू बताए, जिन्हें उन्होंने अंग्रेजी में सोशल (सामाजिक) और इन्टलेक्चुयल

(बौद्धिक) नामों से पुकारा था। उनकी सम्मति में दोनों पहलुओं की समान उन्नति होना आवश्यक है। होस्टेल के सोशल जीवन को उन्होंने फिर दो भागों में विभक्त किया था :—१. गेम्स (खेलकूद) और २. सोशल फन्कशन्स (सामाजिक उत्सव)। इन दोनों में सफलता प्राप्त करना उन्होंने सफल विद्यार्थी की निशानी बतलाई थी। इन्टलेक्चुयल (बौद्धिक) जीवन को उन्होंने तीन भागों में विभक्त किया था:—१. अध्ययन (study) २. चिन्तन (thought), और ३. विचारों को प्रकट करने की शक्ति (expression)। इन तीनों को विकसित करना उन्होंने समानरूप से आवश्यक बतलाया।

आगे चलकर उन्होंने कहा कि विद्यार्थी जीवन के नायक ही प्रायः संसार के भी नायक हुए हैं। उनका कहना था कि किसी मनुष्य के विषय में उसकी डिगरियों को देख कर मैं कभी भी राय नहीं बनाता हूँ। बी० ए० अथवा एम० ए० की डिगरी प्राप्त कर लेना कुछ भी नहीं है। ये डिगरियाँ जीवन के एक भाग के भी केवल एक अंश के विषय में ज्ञान कराती हैं। उस मनुष्य के जीवन के चार भाग अज्ञात रह जाते हैं। अतः बिना स्वयं मिले-जुले किसी मनुष्य के विषय में ठीक राय कायम करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है।

उन्होंने सभाओं अथवा बहुत से लोगों के इकट्ठे होकर काम करने के विषय में भी एक अनमोल नसीहत दी। उनका कहना था कि एक से दो आदमी होने पर पूर्ण स्वतन्त्रता होना असंभव है। सामूहिक जीवन में समान विचार रखने वालों के बहुमत की सदा जीत होती है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि जो अल्पमत में हैं उनको किसी प्रकार से भी बुरा मानना चाहिए। उनको सदा बहुमत रखने वाले लोगों के साथ मिल

जुल कर कार्य करते हुए अपने अल्पमत को बढ़ाने का यत्न करते रहना चाहिए। जो बहुमत से निश्चित हो गया है उसमें विघ्न कदापि नहीं डालना चाहिए।

बहुमत से निश्चित हुए किन्तु अपने मत के विरुद्ध कार्य में विघ्न डालना तथा बहुमत को अपने मत में बदलने का यत्न करना दो भिन्न बातें हैं। पहली से अत्यन्त नीचता तथा दूसरी से व्यक्तित्व की उच्चता प्रकट होती है।

६-८-१९१७

३. तीन वर्षों का सिंहावलोकन

१६१४ में क्वींस हाई स्कूल लखनऊ से स्कूल लीविंग परीक्षा पास करने पर जब मुझे म्योर सेंट्रल कालेज इलाहाबाद पढ़ने को भेजने की सलाह होने लगी उस समय मेरे हृदय में तरह-तरह के विचार उठते थे। मैं एकान्त में बैठ कर अपने कालेज के जीवन का चित्र आँखों के सामने खींच-खींच कर हर्षित हुआ करता था। सोचता था कि कालेज में पैर रखते ही मैं अपने पुराने जीवन को सफलता में पलट दूँगा। किन्तु उस समय मैं यह बात ठीक-ठीक नहीं जानता था कि कालेज के जीवन में क्या-क्या विशेषताएँ होवेंगी। हृदय कुछ अनजान आशाओं से भरा रहता था। इतना अवश्य ही भली प्रकार समझता था कि कालिज की निस्बत बोर्डिंग का नए जीवन में विशेष भाग होगा।

अंत को वह दिन भी आया। किन्तु जैसा कि सदा से ही होता आया है, स्वप्न और वास्तविकता में बहुत अन्तर होता ही है। इलाहाबाद आने पर सबसे पहली कमी अपने पुराने मित्रों के अभाव की मालूम हुई। एक मित्र अथवा मिलने वाले, कुछ कहिए, थे उन्हीं के साथ सब समय कटता था। इनसे भावी जीवन के सफलता के संबंध में मदद मिलने के बजाय उल्टी अड़चनें ही अधिक मिलीं। कदाचित् वे भी अपने मन में ऐसा ही समझते होंगे। इसका कारण यह था कि वे किन्हीं नए विचारों को लेकर नहीं आए थे। अनेक बातों में मुझसे भी बहुत पीछे थे। मैं स्वयं अधिक मिलने जुलने की आदत वाला नहीं था। वे मुझसे भी बहुत कम मिलनसार थे। यदि मैं अकेला होता तो शायद बहुत से

लोगों से मिलने पर अपने लिए ठीक रास्ता ढूँढ निकालने में सफल हो जाता। इस समय मेरा विचार यह है कि लोग दूसरे की बताई हुई बात का बिलकुल भी आदर नहीं करते हैं। स्वयं गिर कर सीखना ही नियम हो गया है। यह शायद कुछ ठीक भी है क्योंकि यदि ऐसा न हो तो मनुष्य आगे कुछ भी उन्नति नहीं कर सके। हाँ, दूसरों के कुछ अनुभवों को मानना भी आवश्यक है, क्योंकि ऐसा न करने से भी उन्नति संभव नहीं है। खैर, यदि भावी जीवन का सबक इन मानने वाली बातों में होता तो अच्छा था। मुझे तो सबक देने वाला ही नहीं मिला।

हाँ, तो समय कटता रहा। नई बात सभी अच्छी मालूम होती है। नई जान-पहचान हुई, किन्तु यह कालिज की जान-पहचान भी अजब तरह की होती है। रेल की जान-पहचान व इसमें कोई भी अन्तर नहीं होता है। मैं तो यह समझता हूँ कि रेल की जान पहचान भी इससे अच्छी होती है। दो वर्ष ही बीत गए। विशेष लाभ न होने पर भी समय अच्छा ही कट गया। हाँ, एक बात तो भूल ही गया। इन नई जान पहचान वालों में एक बड़ा ऐब झूठी तारीफ करने का होता है। इन लोगों की बातों का विश्वास न करने पर भी अपने सम्बन्ध में सचाई आँखों के सामने से अवश्य छिप जाती है।

दो वर्ष बाद परदा हटा। दो वर्ष के अनुभवों ने कुछ-कुछ ठीक मार्ग का पता लगवा दिया था। गरमी की छुट्टी के लंबे लंबे दिनों में फिर नए सिरे से आशाएँ बाँधीं। पुराने खोए हुए समय की याद आने पर 'जो हुआ सो हुआ' कह कर दिल को समझाया। फिर कालिज खुला। सभाओं में बोलना, लेख लिखना, चित्र बनाना, खेलों में भाग लेना, धार्मिक तथा अन्य उपयोगी विषयों का अध्ययन करना इत्यादि बहुत से

कार्यों में एक साथ हाथ डाला, किन्तु कहीं पर कोई कमी थी, अतः वर्ष का अन्त होते होते सब कार्यों में शिथिलता आती गई। कदाचित् अपने मन में ही कहीं पर निर्बलता का बीज था। एक बात मुझे याद है। ऊपर दी हुई अनेक बातों के साथ मैंने दूसरों की सेवा करने का भी निश्चय किया था। होस्टेल के अस्पताल के कमरे में रोगी विद्यार्थियों के पास नित्य हो आना व किसी साथी का कोई भी कार्य हो तो इनकार न करना, इन दोनों बातों को भी मैंने नियमों में रक्खा था। किन्तु एक दो बार लोगों के हँसने पर मन मुकर गया। यह चरित्र की निर्बलता नहीं तो और क्या थी।

गरमियों की छुट्टी आते-आते मेरी अजब हालत हो गई। अंग्रेजी में जिसे सिनिक (cynic) कहते हैं मेरी अवस्था ठीक उसी मनुष्य की सी हो गई। कालिज के जीवन के इस चौथे वर्ष के प्रारंभ में मेरी अवस्था तीसरे वर्ष के प्रारंभ की अवस्था से ठीक उलटी हो गई है। बड़ी-बड़ी आशाएँ हृदय में आती ही नहीं। यदि आती भी हैं तो उनके अनुसार कार्य करने का साहस नहीं होता। यदि किसी प्रकार कार्य प्रारंभ कर भी दिया जावे तो वह कुछ दिन भी नहीं चल पाता है। सिर के अंदर सब संसार उलझा हुआ मालूम पड़ता है, और यह उलझन ऐसी मालूम होती है कि कभी भी नहीं सुलझेगी। सत्य असत्य, धर्म अधर्म, उचित अनुचित में भेद नहीं मालूम होता। मन चाहता है कि कुछ न सोचूँ, आँखें कहती हैं कि कुछ न देखूँ, कान कहते हैं कि कुछ न सुनूँ। एक अंधकार है जिसके विषय में ज्ञात नहीं कि यह अंधकार ही है! एक शून्यता है जिसके विषय में मालूम नहीं कि यह शून्यता ही है—

१४-८-१६१७

४. बचपन और बड़ी उमर

बचपन और बड़ी उमर में सबसे बड़ा भेद यह होता है कि पहली अवस्था में प्रत्येक बात कहानियों के अनुभव से जाँची जाती हैं, किन्तु दूसरी अवस्था में संसार के प्रत्यक्ष और कठिन अनुभव से। बचपन में यह ही समझ में नहीं आता है कि लोग रुपया कमाने को नौकरी क्यों करते हैं। प्रथम तो रुपया चाहिए ही क्यों। क्या रॉबिन्सन क्रूसो का सा जीवन सुन्दर जीवन न होगा? यदि चाहिए भी तो यह मिहनत बिलकुल व्यर्थ है। अभी उस दिन तो दादी से उस गिरे हुए मकान के तहखाने में रक्खे मुहरों से भरे सोने के कलसों का हाल सुना ही था। बचपन के सुखों का एक बड़ा कारण यह कल्पना-संसार अवश्य है।

कुछ बड़े होने पर एक डर बढ़ जाता है—पाठ याद न होने पर मास्टर साहब की घूरने वाली आँखों का। खेलने के सामने पढ़ना समय नष्ट करना मालूम होता है, किन्तु माता तक उस समय नष्ट करने को कहती है। खेलते-खेलते मास्टर साहब के आने का समय निकट आ जाने की याद हाथ रोक देती है। इसके सिवाय और कोई डर नहीं होता है। वीरता का तो कुछ कहना ही नहीं। क्या अब डाकू बिलकुल समाप्त हो गए? एक बार भी माता के सामने उन्हें दण्ड देने का अवसर नहीं मिलेगा? क्या अब नावें डूबती ही नहीं? एक बार भी अकेले सब डूबते हुए आदमियों को बचाने का मौक़ा हाथ नहीं आएगा?

अब एक समय आता है जब पुराने सुख नए सुखों में

धीरे-धीरे बदल जाते हैं। पढ़ने में एक विशेष आनन्द आने लगता है। इसका कारण पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों के विषय नहीं होते हैं, बल्कि दर्जे में सबसे आगे बैठने व परीक्षाओं में सबसे अधिक नंबर फटकारने का शौक विशेष होता है। इस अवस्था में चित्त किन्हीं गम्भीर बातों को नहीं सोचता है। हाँ, कभी-कभी घर के बड़े लोगों को देश की दुर्दशा का वर्णन करते हुए सुन कर कुछ समय के लिए कष्ट अवश्य होता है। यह भी विचार उठते हैं कि मैं ही देश का उद्धारकर्त्ता क्यों न होऊँ—असंभव तो तनिक भी है नहीं।

स्कूल से निकलते ही एक नये संसार में प्रवेश करना होता है। प्रारम्भ में तो यह संसार आशापूर्ण दिखलाई पड़ता है, किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता जाता है संसार के असली स्वरूप के दर्शन होने लगते हैं। संसार की कठिन उलझनें तथा प्रत्यक्ष अनुभव प्रारंभ में कभी-कभी एक प्रकार की निराशा उत्पन्न कर देते हैं किन्तु यह शीघ्र ही दूर हो जाती है। धीरे-धीरे मनुष्य तेली के बैल के समान नीचे को सिर डाल कर इस चक्र में खुशी-खुशी पड़ने को उद्यत हो जाता है।

युवावस्था के आरम्भ में जो चित्त उचटता सा मालूम होता है उसका मुख्य कारण प्रायः उस समय अपने ऊपर कम जिम्मेदारियों का होना होता है। जहाँ सिर पर बोझ लादा गया कि मनुष्य ठीक रास्ते पर आया। पुराने स्वप्न स्वप्नमात्र रह जाते हैं। यदि एक बार फिर पुरानी दुनिया को देखने की इच्छा होती हो तो क्षण भर के लिए आँखें मूँद कर बचपन की याद कीजिए। एक झलक दीख पड़ेगी।

२३-८-१९१७

५. पढ़ाई के बाद का जीवन

पढ़ाई के बाद का जीवन दो प्रकार से बिताया जा सकता है :— १. सादा, जो बहुत कम संभव है, और २. मामूली। एक तीसरी संभावना दुनियावी जीवन की है, जो मुझे अभी तो बिलकुल पसंद नहीं है।

सादा जीवन

विवाह न करना सुखी रहने के लिए नितांत आवश्यक है। माता-पिता का ऋण व उनकी इच्छा के विरुद्ध होना और संसार के नियमों के अनुकूल न होना अविवाहित जीवन की सबसे बड़ी रुकावटें हैं।

दूसरों की रोटी तोड़ना, जैसे साधु संन्यासी हो जाना, मैं बहुत बुरा समझता हूँ। अपने पुरुषार्थ से अपना निर्वाह करना आवश्यक है। किन्तु रुपये की मैं बहुत ही कम या बिलकुल भी आवश्यकता नहीं समझता। यदि समाज से सम्बन्ध ही न रखना हो तो रुपये की अधिक आवश्यकता रह ही नहीं जाती। केवल अपने शरीर के पोषण व अपनी कुछ पुरानी आदतों को पूरा करने के लिए कुछ धन की आवश्यकता होगी।

इस प्रकार के जीवन में दो विशेष कठिनाइयाँ हैं। पहले तो माता पिता आदि की जिम्मेदारी के कारण शुरू जीवन में इस प्रकार रह सकना संभव नहीं है। दूसरे देश में आबादी बहुत बढ़ जाने के कारण उस प्रकार का असली जीवन बिता सकना दुःसाध्य है। अतः समाज में कुछ न कुछ मिल-जुल कर रहना

होगा। इसके अतिरिक्त शरीर व आदतों की दृष्टि से भी पूर्ण त्याग असह्य होगा। तो भी जितना भी हो सके ठीक है।

इस प्रकार के जीवन का कुछ नमूना जार्ज इलियट के साइलस मार्नर अथवा गांधी जी से मिल सकता है। इसके लिए सब से पहले शरीर अभी से बिलकुल स्वस्थ होना चाहिए, नहीं तो दूसरों से मदद लेनी ही पड़ेगी। किसी भी अच्छे अजनबी गाँव में (शहर में नहीं), जो यदि गंगा के निकट हो तो उत्तम है, छोटी सी कुटिया बनाकर और उसके चारों ओर थोड़ी सी जमीन लेकर रहना। गंगा में स्नान, खेतों में घूमना, खाने के लिए कुछ फल व तरकारी अपनी जमीन में अपने हाथ से पैदा कर लेना व कुछ नाज मोल ले लेना। थोड़ा सा ऐसा काम कर लेना जिससे कुछ आमदनी हो जावे—दस बारह रुपये से अधिक की आवश्यकता नहीं। यही रुपया खाने, कपड़ों व अन्य आवश्यकताओं पर व्यय करना।

कपड़े गाँव वालों के से ही। जमीन पर सोना और कम्बल आदि मोटी चीजें ओढ़ना। कपड़ों की जितनी कम जरूरत हो उतना ही अच्छा। घी दूध आदि स्वादिष्ट पदार्थ नियम से बिलकुल न खाना संसार की कुछ खबर जानने के लिए और पुरानी पढ़ाई की यादगार में एक समाचार पत्र तथा एक पत्रिका मँगाते रहना व अपनी रुचि की आठ दस पुस्तकें भी रखना। मनोरंजन की वस्तुओं में एक बाँस की बाँसुरी, व गंगा में तैरना और घूमने निकल जाना। आवश्यकताएँ जितनी कम हों उतना ही अच्छा है। रात्रि में चिराग आदि का कुछ झंझट न करना। गाँव वालों से बहुत कम सम्बन्ध रखना।

अंत सबसे उत्तम वही है—वीरगति—न किसी का लेना और न किसी का देना।

मामूली जीवन

हर हालत में विवाह करना बड़ी मुसीबत है। इससे रिश्तेदारी और कच्चे बच्चे बढ़ जाने से सुख से समय नहीं बीत सकता। मामूली जीवन से काटने के लिए कम से कम २००) मासिक आवश्यक है। माता पिता की सेवा करना मुख्य धर्म है।

जीविका के लिये कोई ऐसा काम करना ठीक होगा जिसमें जिम्मेदारी बहुत न हो, जैसे प्रोफ़ेसरी आदि। नगर के बाहर सिविल लायंस आदि साफ़ सी जगह में छोटे से बंगले में बिलकुल अकेले रहना। सिवाय एक नौकर और माली के किसी को साथ न रखना। इन नौकरों को शुरू में ही खूब छाँट कर रखना। यदि संभव हो तो ये भी ऐसे ही हों जिनके रिश्तेदार आदि कोई न हों तथा बिलकुल ईमानदार और ढलती उमर के हों। रुपये पैसे से उन्हें हमेशा खुश रखना।

एक छोटी सी सुन्दर वाटिका और एक बढ़िया सी लायब्रेरी होनी चाहिए। कुछ समय वाटिका में खुद माली के साथ काम करना। लायब्रेरी में सब उत्तम-उत्तम समाचार पत्र तथा मासिक पत्रिकाएँ आनी चाहिए। धर्मग्रन्थ, इतिहास, साहित्य व कला सम्बन्धी चुनी हुई पुस्तकें रहनी चाहिए। लायब्रेरी के साथ ही बगीचे की ओर एक स्टूडियो होना चाहिए, जिसमें पानी व तेल के रंगों और फ़ोटो से चित्र खींचने का बढ़िया सामान रहना चाहिए। संगीत की भी कुछ सामग्री हो। हिंदी साहित्य की सेवा करना आवश्यक है।

भोजन जहाँ तक हो सादा हो। कुछ चीजें अपने हाथ से और कुछ नौकर से बनवानी चाहिए। खाना बनाने वाला अलग नौकर नहीं रखना चाहिए। नीचे लिखे प्रकार से खाने

का प्रबन्ध मैंने एक बार सोचा था :—प्रातः ताजा दूध व मेवे या मुरब्बा। दोपहर को कंद जैसे शकरकंद आलू आदि भुने हुए और खीर या रोटीदाल या खिचड़ी या पूरी आदि। तीसरे पहर को फल और शाम को दूध। एक समय के खाने में जहाँ तक हो सके एक ही रस होना चाहिए और यथासंभव भोजन की सामग्री कम बनावटी होनी चाहिए। बचपन में खाई हुई तरह तरह की चीजों की याद अवश्य आवेगी, जैसे पीठे के आलू, चीले, खोए की गुझिएँ आदि। यह इच्छा कभी कभी घर जाने से पूरी हो सकती है। तरकारी व फल कुछ तो बगीचे में पैदा हो सकते हैं और कुछ बाजार से मँगाए जा सकते हैं। यदि माली गाय रख सके तो अच्छा है, नहीं तो दूध ग्वाला से ठीक करले। खुद गाय पालना झंझट है। वास्तव में दूध आदमी की असली खुराक नहीं है, रिवाज के कारण आवश्यक मालूम पड़ता है।

यह रहने का मकान व बगीचा किराये का होना चाहिए, अपना नहीं! जिमींदारी धीरे धीरे बढ़ाकर पूरे दो तीन गाँव कर लेने चाहिए और उन्हें बिलकुल पिता जी के ऊपर छोड़ देना—जिसे वे उन्हें देना चाहें उसे दे दें। सवारी घोड़े आदि की न रखना, आवश्यकता के लिए साइकिल अथवा मोटर साइकिल रक्खी जा सकती है। निकट कोई बड़ी नदी अवश्य होनी चाहिए और उस पर एक अपनी नाव का होना अच्छा है। छोटी छुट्टियों में निकट के गाँवों में घूमने निकल जाना व बड़ी छुट्टियों में भारत के अन्य भागों अथवा विदेशों में भ्रमण करना।

बैंक में दो चार हजार रुपया सदा रहना चाहिये। रुपया जो कमाया जाय उसमें से कम से कम आधा या जितना वे चाहें उतना माता पिता के लिए सदा रहना चाहिए, व

उनको सब प्रकार से सुख पहुँचाने का यत्न करना चाहिए। बरेली में रंजीतराय पुस्तकालय को, जो पिता जी ने क़ायम किया है, बहुत बड़ी हालत में कर देना। उसका अपना भवन व खर्चे के लिए अलग रुपया जमा कर देना, जिसके सूद से काम चल सके। पुस्तकालय में संस्कृत के ग्रंथों का विशेष व अन्य ग्रंथों का भी बहुत बड़ा संग्रह होना चाहिए जो इस प्रान्त में और कहीं कठिनता से हो। मुख्य समाचार पत्र व मासिक पत्रिकाएँ भी आनी चाहिए। इस संस्था पर जितना रुपया खर्च हो जावे उतना थोड़ा है। क्योंकि उसके द्वारा पिता जी की एक इच्छा की पूर्ति होगी।

रुपया कमाना आवश्यक है। पहले मैं सोचा करता था कि नौकरी इत्यादि कुछ नहीं करनी चाहिए। रुपया बेकार चीज है। जरूरतें बढ़ाये ही नहीं तब फिर रुपये की जरूरत ही क्यों होगी। किन्तु यह विचार जीवन में घटाना बहुत कठिन है। प्रथम तो मैं ऐसी अवस्थाओं में पाला गया हूं कि रुपया आवश्यक हो गया है। दूसरे, यह 'मामूली जीवन' का प्रोग्राम है जिसमें दुनिया से बहुत कुछ सम्बन्ध रहेगा, अतः दुनिया के साथ ही चलना ठीक होगा—दुनियावी इच्छाओं को पूरा करने में रुपया ही एक मात्र साधन है। तीसरे, माता पिता की भी यही उत्कट इच्छा होगी। चौथे, नवीन अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार भारत के लिए यह ही लाभदायक है कि उसके नवयुवक खूब धन उपार्जन करें—जहाँ तक दूसरे देशों से मिल सके उतना और भी अच्छा है।

अपने घर के बाहर दूसरों के साथ व्यवहार अच्छा किन्तु रूखा होना चाहिए। किसी के साथ बुराई कदापि नहीं करनी चाहिए, किन्तु मेल बिलकुल भी न बढ़ाना। घर के लोगों के कारण उन्हीं के द्वारा रिश्तेदारों से थोड़ा सम्बन्ध रखना

होगा। किसी क्लब या सोसायटी का मेम्बर हो जाना। थोड़ा बहुत मिलना-जुलना मामूली जीवन का एक अंग अवश्य है। घर के लोगों से ठीक वैसा ही व्यवहार करना जैसा बचपन से करते आए हैं, जिसमें उन लोगों को बुरा न मालूम हो।

धन के लिए जो काम किया जावे वह ऐसा हो जिसमें बेईमानी करने की व बहुत मिलने-जुलने की जरूरत न हो तथा देश का भी किसी तरह उपकार हो तो अच्छा है। अपना काम पूरे परिश्रम से व मन लगा कर करना। काम समाप्त होने के बाद उसे बिलकुल भुला देना। किसी स्थान पर बरसों रहने पर भी लोग अपने बारे में बहुत कम जानें, व घर पर तो बहुत ही कम आवें।

घर का जीवन सरल, ऊँचा व सच्चा होना चाहिए। रात्रि में कार्य बिलकुल न करना। दिन के खाली समय को धर्म, साहित्य व देश की वर्त्तमान अवस्था के विषय में ज्ञान प्राप्त करने, लेखों तथा पुस्तकों के द्वारा साहित्य की सेवा करने, गान व चित्रकला द्वारा अपना मनोरंजन करने, बगीचे में काम करने, घूमने, नाव खेने व देशाटन करने इत्यादि में बिताना चाहिए। वैदिक ग्रन्थों तथा ज्योतिष का विशेष रूप से अध्ययन करना। स्वाध्याय, व्यायाम व संध्या, अग्निहोत्र आदि नित्यकर्म नियम से करना। घर में पलंग, मेज कुर्सी आदि आराम की सब सामग्री होनी चाहिए किन्तु उनकी आदत नहीं पड़नी चाहिए। अक्सर जमीन पर सोना व जमीन पर बैठ पर कार्य करना उत्तम है। वस्त्र बाहर सादा किन्तु जैसा रिवाज हो वैसे पहनना, किन्तु घर पर बहुत मामूली, मोटे।

मरना अवश्य है। जहाँ तक संभव हो घर पर बीमार

पड़ कर न मरना। जीवन का अन्तिम उद्देश्य भारत को स्वतंत्र करना है, अतः जब कभी देश के लिए आवश्यकता हो आगे बढ़ कर वीरगति को प्राप्त करना। पुस्तकें आदि निज का सब सामान 'रंजीतराय पुस्तकालय' का पहले से कर देना।

मई १९१७.

सूचना—भावी जीवन के विषय में ऊपर की बातें ऐसे समय पर लिखी गई थीं जब मन विशेष अस्वस्थ सा था। संसार से अलग रहने की ध्वनि जो उसमें सुन पड़ती है इस समय बिलकुल व्यर्थ मालूम पड़ती है। इस समय यदि पूछा जाय तो मन यही कहेगा कि माता-पिता के साथ मिल-जुल कर हँसी खुशी से जीवन बिताना उत्तम है।

६. आशावादी

आज कल मेरे मानसिक जीवन के वे दिन हैं जब संसार असार नहीं दीखता है। बी० ए० की परीक्षा निकट होने के कारण सब समय यदि पढ़ने में नहीं तो पढ़ने के विषय में सोचने अथवा बातचीत करने में लग जाता है। किसी दूसरी बात को सोचने को समय ही नहीं मिलता।

पुराने सेंट्रल हिंदू कालेज अथवा वर्तमान हिंदू युनिवर्सिटी कालेज के प्रिंसिपल शेशाद्री का ऐड्रेस आज शाम को बोर्डिंग में हुआ था। उनके बोलने के ढंग में यह विशेषता थी कि उनका कहा सब समझ में आ जाता था। यह गुण बहुत ही कम लोगों में मैंने पाया है। लोकमान्य तिलक व गाँधी जी इन्हीं लोगों में हैं। सरोजनी नायडू इनसे ठीक उलटी हैं। शेशाद्री महाशय ने इस बात पर जोर दिया कि विद्यार्थियों को परीक्षा के लिए पढ़ने के सिवाय अध्ययन की आदत डालने का यत्न करना चाहिए। इसमें संदेह नहीं कि किसी भी आगे बढ़ने की इच्छा रखने वाले विद्यार्थी के लिए इससे अधिक लाभदायक और कोई भी बात उसकी भविष्य की उन्नति के लिए नहीं हो सकती। बहुत से विद्यार्थी, जो स्कूलों व कालेजों में अच्छे गिने जाते हैं, इसीलिए जीवन में सफल नहीं हो पाते कि वे अध्ययन और मनन की आदत वाले नहीं होते। वे स्कूल व कालेज की पुस्तकें रट कर प्रथम आने में ही अपनी सफलता का अन्त समझते हैं। प्रिंसिपल शेशाद्री ने यह भी समझाया कि विद्यार्थियों को संसार दुखमय, निःसार व व्यर्थ कभी नहीं समझना चाहिए। इसे हीनता तथा देश की भावी

अवनति का सूचक समझना चाहिए। इस विचार वाले नवयुवक अपने देश के नाशक होंगे।

मैं भी मानता हूँ कि संसार, राष्ट्र, जाति तथा व्यक्ति की उन्नति के लिए आवश्यक है कि एक-एक मनुष्य कार्य करने वाला और परिश्रमी होना चाहिए, नहीं तो इन गुणों वाले किसी दूसरे देश के आदमियों की गुलामी सदा करनी होगी। किन्तु इस पर भी मैं यह अब भी समझता हूँ कि यदि एक तरह से देखा जाय तो यह सांसारिक उन्नति है कुछ भी नहीं। आर्थिक उन्नति से तो कुछ भी प्रत्यक्ष लाभ मेरी समझ में नहीं आता, सिवाय इसके कि वह लोगों को संसार में बहुत अधिक लिप्त हो जाने से रोक देती है। यह सच होने पर भी संसार में रहते हुए उत्तम यही है कि इस प्रकार के विचारों की उन्नति नहीं करनी चाहिए क्योंकि इससे लाभ की निस्बत हानि की सम्भावना अधिक है।

बोलने की शक्ति के संबंध में मेरा पूरा विश्वास हो गया है कि संसार में सफलता के लिए सच्ची योग्यता के बाद—कभी-कभी उससे पहले भी—इससे बहुत सहायता मिलती है। इस बात की ओर विद्यार्थियों का बहुत छोटी उमर से ध्यान आकर्षित करना चाहिए।

११. ११. १६१७.

७. हृदय की एक बुराई

दुनिया में दो आदमियों से मेरे दिल में ऊँचे रहने की बहस सी पड़ गई थी, परन्तु मुझे सफलता नहीं मिली। एक से हार गया, दूसरे से बहस समाप्त हो गई।

एक को तो मैं अपने सामने सब बातों में नीचा समझता था। यद्यपि यह विचार अच्छा नहीं था, किन्तु कुछ स्वभाव सा हो गया था। परन्तु चुपचाप एक-एक बात में मैंने परीक्षा करके देखा और उलटा पाया—मैं सब बातों में उनसे नीचा था। विद्या में मुझसे वे सदा उत्तम रहे, यद्यपि मेरे स्कूल लीविंग में प्रथम डिवीज़न में और उनके अभाग्यवश मैट्रिक में द्वितीय डिवीज़न में पास होने से मैं अपने को श्रेष्ठ समझने लगा था। इंटर में अंत को फ़ैसला हो गया कि मैं उनके बराबर का नहीं हूँ। शारीरिक बल में मैं अपने को कम से कम अधिक फुर्तीला अवश्य समझता था, किन्तु यह भी परीक्षा करने पर उलटा ही साबित हुआ। दौड़, कुश्ती, खेल इत्यादि सब ही में मैं उनसे हारा। धन में वे मुझसे निःसंदेह अधिक धन वाले हैं, किन्तु उसकी ओर मेरा कभी ध्यान नहीं जाता है। इस बात में हम लोगों की योग्यता का प्रश्न नहीं उठता है—हम लोग तो धन कमाते नहीं हैं। मैं पहले अपने को उनसे मिलनसार अधिक समझता था, किन्तु यह बात भी ठीक नहीं निकली। चार बरस बोर्डिंग में रहने के बाद यदि आज देखा जाय तो वे मुझसे कहीं अधिक साथियों से सुबह उठ कर नमस्कार व प्रणाम करते हैं।

सब प्रकार से हारने पर भी मेरे हृदय में अपने को उनसे

उच्च समझने का भाव मौजूद है। सच्ची बड़प्पन की बातों में अपने को छोटा पाने पर बहाने के लिए मन इधर-उधर की बातें गढ़ लेता है। कभी कुलकी उच्चता का सहारा लेता है, और कभी समझदार सूरत का। किन्तु असल में ये केवल बहाने ही हैं। मन की इस बहस ने कम से कम मेरी ओर से, कदाचित् उनकी ओर से भी, कुछ-कुछ द्वेष का भाव सा धारण कर लिया है, जो कभी-कभी घृणा में परिवर्तित हो जाता है। हृदय में छिपे रहने पर भी इस प्रकार के विचार कुत्सित होते हैं। मैं यत्न तो इन्हें दूर करने का बहुत करता हूँ—कभी तो बहुत दिनों को भुला देने में सफल भी हो जाता हूँ—किन्तु फिर भी ये कभी-कभी फेरा कर ही जाते हैं।

दूसरे को मैं एक प्रकार से आदर करता हूँ। कुछ दिनों तक तो मेरे दिल में उनके से भाग्य का—विशेषतया कुछ बातों में, जैसे स्वास्थ्य और सच्चरित्र में—हो जाने की इच्छा रहती थी। यह सब होने पर भी दिलों में कुछ बहस सी पड़ गई थी। किन्तु अभाग्यवश वे किसी भी बात में मुझसे आगे नहीं निकल सके। इसका मुख्य कारण कदाचित् मुझे उत्तम शिक्षा व रहने के अवसरों का मिल जाना था। हृदय में उनकी ओर एक प्रकार की दया का सा भाव रहता है। अपने को उच्च रखने का भाव मैं समझता हूँ प्राणिमात्र में है, किन्तु उसमें द्वेष व घृणा का अंश बुरा है। इसे सदा दूर करने का यत्न करना चाहिए।

हृदय में छिपी हुई बुराइयों में से यह एक छोटी सी बुराई है।

१८. ११. १९१७.

८. सांसारिक सफलता की कुञ्जी

कुछ ही दिन पहले तक मेरी समझ में यह नहीं आता था कि लोगों से जान पहचान बढ़ाना व उनकी प्रशंसा प्राप्त करना भी कोई आवश्यक बात है। लड़कपन में मुझे यह बात बतलाई ही नहीं गई थी। प्रायः लड़कों को इस बात की आवश्यकता कभी भी नहीं बतलाई जाती, जब तक कि स्वयं उन्हें संसार से काम न पड़े। इसके सिवाय कुछ लोग इसे बुरा समझते हैं और कुछ में इसकी योग्यता ही नहीं होती। कम से कम स्कूल में तो सबसे अधिक चुपचाप बैठे रहने वाले लड़के की तारीफ़ मास्टरों से लेकर साथी तक करते हैं। किन्तु जीवन में इससे उलटा है। सबसे अधिक बक सकने वाला आदमी ही संसार के काम का होता है।

मुझे जब पहले पहल यह बात बतलाई गई तब मैं भी इन बातून आदत के लोगों से घृणा करने वालों में से था—कुछ-कुछ अब भी हूँ। कदाचित् इसका कारण मेरी इस विषय की अयोग्यता है। जब कभी मैं जोर देकर किसी बड़े आदमी से मिलने के लिए भेजा जाता था तब बेमन ही जाता था। मेरी आदत कभी भी दिल की पूरी बात कहने की न थी। मुझे खूब याद है कि मैं एक बार आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान पंडित तुलसीराम के पास भेजा गया था, किन्तु मैं उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने में सफल नहीं हुआ—यत्न भी मैंने नहीं किया। पिता जी के सिवाय मेरे मित्रों ने भी मुझे डिबेटिंग सोसायटी आदि में शामिल होने की प्रेरणा दी, किन्तु मेरी आदत की वजह से वे सफल नहीं हुए। मैं समझता था कि

विद्या उत्तम वस्तु है, किन्तु उसको दूसरों पर प्रकट करने की शक्ति आवश्यक नहीं है। बेनसन (Benson) का वह विद्यार्थी मेरा आदर्श था जिसको बरसों साथ रहने पर भी उसके मास्टर समझ नहीं सके थे और जो सैकड़ों मिलने वालों के होने पर भी बिना किसी से मिले ही बोर्डिङ्ग से चला गया था।

इसमें संदेह नहीं कि तारीफ़ हासिल करने वालों में बहुत सा अंश स्वार्थ का होता है, जो सचमुच बुरा है। अक्सर नये वकील किसी सार्वजनिक काम में इसलिए हिस्सा लेते हैं कि उनकी वकालत चलने में मदद मिले—मशहूर हो जाने पर बहुत से मुवक्किल जान जावेंगे। इसी स्वार्थपन को ध्यान में रखकर मैं इस बातूनपन व मशहूर होने की आदत को बुरा समझता था। वास्तव में स्वार्थपन तो अवश्य बुरा है, किन्तु प्रसिद्धि प्राप्त करना संसार की सफलता के लिए अत्यंत आवश्यक है। प्रायः हर जगह आप चलते पुरजे और बातून आदमियों को, चाहे वे कम योग्यता के हों, चुप्पे पर काम करने वाले आदमियों के ऊपर पावेंगे। यदि योग्यता हो और ऊपर से अपने को मशहूर कर लेने की शक्ति भी तब क्या बात है।

प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए मेरी समझ में चार बातों की जरूरत है—बोलने की शक्ति, धन, कुल और रहन-सहन का ढंग। इनमें पहली तीन में से किसी एक से ही काम निकल सकता है।

१६. ११. १६१७.

६. रोटी कमाने का सवाल

रोटी कमाने का सवाल अब अक्सर सामने आने लगा है। मुझे अच्छी तरह याद है कि छोटेपन में मैंने सोचा था कि जो कोई नौकरी मैं करूँगा उसमें दो बातों का ध्यान रक्खूँगा, एक तो वह सरकारी नौकरी न हो और दूसरे वह क्षत्रिय वृत्ति की हो। किन्तु इन बातों पर अब ध्यान नहीं जाता है। अब दूसरी ही दो बातों का विचार आता है—प्रथम तो जो कार्य किया जावे वह अपनी योग्यता के अनुकूल हो और दूसरे रुपया काफ़ी मिले।

स्कूल के समय से ही मैं इंजीनियरी बहुत पसंद करता था, और अब भी करता हूँ। 'बार्हस्पत्य' महाशय (बा० छोटे लाल, एक्जिक्यूटिव इंजीनियर) को नौकरी के विषय में मैंने अपना आदर्श बना रक्खा था। चुपचाप नौकरी का काम कर आना व बचे हुए समय में अध्ययन करना मुझे बहुत अच्छा जीवन जँचता था। इंट्रेंस तक कुछ कुछ यही विचार रहा। कालेज में जब मैंने अर्जी दी थी तब भी मैथेमेटिक्स का विषय इसीलिए लिखा था। किन्तु इन्हीं दिनों यह विचार कई कारणों से छोड़ देना पड़ा—प्रथम तन्दुरुस्ती का ख्याल, दूसरे हिसाब में कमजोर होना, तीसरे कुछ कुछ पढ़ाई के खर्च का भी प्रश्न सामने आने लगा था। कालेज में दाखिल होने पर इंजीनियरी में जाने का विचार बिलकुल छुट गया। साथ ही नौकरी का प्रश्न भी बहुत कम उठता था।

इस वर्ष यह सवाल फिर उठा है और इसका गरमियों की छुट्टी तक फैसला हो जाना आवश्यक है। इंजीनियरी के बाद

अब मैं प्रोफ़ेसरी की लायन को पसंद करता हूँ। मैं ऐसा पेशा करना चाहता हूँ जिसमें जिम्मेदारी बहुत न हो, काम आसान हो व बहुत चालाकी आदि की ज़रूरत न हो। यद्यपि मैं किसी विशेष विषय में पंडित नहीं हूँ, न किसी विशेष विषय की ओर अधिक रुचि ही है किन्तु परिश्रम करके सफलता प्राप्त कर सकता हूँ। प्रोफ़ेसर का शांत जीवन मुझे बहुत भाने लगा है। वकालत तो मैं नहीं करूँगा। पिता जी भी ज़ोर नहीं देते हैं। उन्होंने तो फ़ैसला करना मुझ पर छोड़ दिया है।

एक समय का मुझे ख्याल है कि मैंने भावी जीविका के विषय में कुछ विचार प्रकट किए थे किन्तु ये सोच समझ कर नहीं कहे गए थे। मैंने कहा था कि मैं कानून पास करके पाँच छ: बरस व कुछ अधिक दिन वकालत करके रुपया इकट्ठा कर उसे छोड़ दूँगा और फिर उस रुपये से प्रेस खोलकर एक पत्र निकालूँगा और शेष समय इस प्रकार पढ़ने लिखने में लगाऊँगा। अब तो वकालत के संबंध में मेरा पूरा निश्चय है कि यह पेशा मैं नहीं करूँगा। मैं अपने को इसके लिए बिलकुल अयोग्य समझता हूँ।

पिता जी ने एक बार गाँव जाते हुए रेल में बातचीत के सिलसिले में कोई कारखाना खोलने का विचार प्रकट किया था व रंगों के कारखाने का जिक्र आया था। अब भी उनका कहना है कि अगर किसी को रुपया कमाना हो तो वह केवल तिजारत से हो सकता है। ताऊ जी की इच्छा मुझे डाक्टरी में भेजने की बहुत थी। उनका ख्याल था कि इस पेशे में सेवा और रुपया दोनों हैं। किन्तु पिता जी व मैं स्वयं इसे नहीं पसंद करते हैं। पिता जी की कुछ कुछ इच्छा वकालत पास करने की इसलिए थी, व शायद अब भी है, कि मैं दो तीन बरस प्रैक्टिस करने के बाद मुंसफी व जजी में निकल जाने

की कोशिश करूँ। किन्तु मैं एक तो कचहरी के इस माथापच्ची वाले काम को ही पसंद नहीं करता हूँ, दूसरे वकालत के फंदे में नहीं फँसना चाहता—क्या जाने उससे निकल सकूँ या न निकल सकूँ।

जो धाय मुझे खिलाया करती थी वह कहा करती थी कि मेरा बेटा डिप्टी बनेगा, एक मित्र ने आशा प्रकट की थी कि मैं इंगलैंड से आई० सी० एस० पास करके आऊँ, व आज ही एक अन्य मित्र ने कहा कि मेरे लिए स्कूल की मास्टरी यद्यपि ठीक तो नहीं है किन्तु कुछ और तो सूझ नहीं पड़ता।

× × ×

यदि लोग अपने पिछले व अगले जन्म के विषय में जानते होते अथवा यह भी निश्चय होता कि ये जन्म होते भी हैं तो बहुत सी बुराइयां दूर हो जातीं व उन्नति करने वाली आत्माओं का मार्ग सुगम हो जाता। इसमें संदेह नहीं कि बुराइयाँ बढ़ भी सकती थीं किन्तु कदाचित् हानि की अपेक्षा लाभ अधिक होता।

ठीक इसी प्रकार भावी जीवन है। यदि मनुष्य लड़कपन से ही निश्चय कर सके कि मैं संसार की इस कमी को पूरा करूँगा तो उस मनुष्य के लिए व संसार के लिए भी उत्तम हो। परन्तु जब किसी बड़े कार्य की पूर्ति करना हो तब न। सच पूछिए तो जो कुछ कार्य होता दीख पड़ता है वह सब पेट के कारण हो रहा है। मजदूर डलिया नहीं ढोता, न कवि कविता करता—शायद दोनों के हाथ में फावड़ा और हल होता—यदि इन कामों से पेट का प्रबंध न होता। कभी कभी शहर की गलियों में से जाते हुए मेरा मन बहुत उदास हो जाता है जब मेरी निगाह उन सैकड़ों दुखित लोगों पर पड़ती है जो पेट के कारण घसिटते होते हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि

इस प्रकार के मनुष्य किस प्रकार अपना अथवा संसार का भला कर रहे हैं।

इसमें संदेह नहीं कि कुछ थोड़ी सी आत्माएँ ऐसी भी अवश्य होती हैं जो अपना काम कर्त्तव्य समझ कर करती हैं, न कि रोटी कमाने का जरिया समझ कर। किन्तु इन आत्माओं में भी बहुत सी ऐसी निकलेंगी जिनके पेट भर जाने का प्रबंध है अतः वे अपना कार्य कर्त्तव्य समझकर कर सकती हैं। यों केवल कर्त्तव्य के लिए कार्य करने वाले इस बड़े संसार में सचमुच उंगली पर गिने जा सकते हैं।

४. १ १९१८.

१०. अनुभव ज्ञान

शिक्षा का प्रथम उद्देश्य प्रत्येक विषय के संबंध में अपना मत बना लेने की शक्ति पैदा करना होना चाहिये। इस अपने मत को कहने और लिखने की शक्ति रखना इसके बाद आवश्यक है। अपने मत के अनुसार चलना वास्तविक बड़प्पन की निशानी है।

किसी विषय में ज्ञान प्राप्त करके उसे काम में न लाना ऐसा ही है जैसे कि किसान का नाज पैदा करके न उसे बोना न बेचना। ज्ञान कार्य रूप में प्रयोग के लिये है, उससे स्वयं लाभ कुछ भी नहीं है। यों आजकल दुनियाँ में ज्ञान का दिखावा, न कि स्वयं ज्ञान, अधिक लाभ पहुँचाता है।

जितनी बात मालूम होती जाय उतनी ही को कार्य रूप में परिणत करते चलना चाहिये। किसी बात के अन्त में ग़लत निकलने से कार्य करने का परिश्रम व्यर्थ नहीं जाता है। किसी भी विषय में पूरा सच्चा ज्ञान प्राप्त करने या कार्य प्रारंभ करने का विचार ठीक नहीं है। यह उन्नति में बहुत बाधक सिद्ध होता है।

कार्य करने की योग्यता, शक्ति, परिस्थिति व भाग्य के अलग अलग होने से ही लोग तरह-तरह की अवस्थाओं में पाये जाते हैं। योग्यता कुछ तो स्वाभाविक होती है और कुछ पैदा की हुई होती है।

कार्य करना ही संसार में सफलता प्राप्त कराता है। कोई आलसी आदमी बड़ा नहीं हुआ है। यह कार्य शरीर, मन व

आत्मा में से किसी एक या अधिक का हो सकता है, किन्तु कार्य करना आवश्यक है।

कोई काम करना किन्तु हृदय से उसमें विश्वास न करना इससे प्रायः सफलता प्राप्त नहीं होती है। क्योंकि ऐसी स्थिति में पूर्ण शक्ति से काम करना संभव नहीं हो पाता। सफल होने की इच्छा रखने वाले लोगों को विश्वास और कार्य में एकता पैदा करनी चाहिए।

दुःख का कारण ऐसी इच्छाओं का रखना है जिनको मनुष्य आसानी से पूरा नहीं कर सकता है।

७-१-१९१८।

११. कथनी और करनी

दुनिया में लोग कहने और करने की बातें अलग अलग रखते हैं। कहावत है कि हाथी के दाँत खाने के और होते हैं व दिखाने के और। लड़कों के हाथ में संसार के बड़े बड़े आदमियों की जीवनी सच पूछिए तो इसलिए नहीं दी जाती है कि वे उनकी नक़ल करें, बल्कि इसलिए दी जाती है कि वे उनकी तारीफ़ करना सीख जावें। स्वामी दयानन्द की जीवनी पढ़ने के बाद यदि मूल शंकर बन कर कोई लड़का संसार के उपकार और आत्मा के संतोष के लिए घर से भागने की तैयारी करे तो वह अव्वल दरजे का नालायक़ समझा जाएगा। लेकिन मूल शंकर जैसा संसार का उद्धार करने वाला लड़का बिरला कहा जाता है। स्वामी दयानन्द का जीवन आदर्श जीवन माना जाता है। बिचारा लड़का सिर हिला हिला कर समझाया जायगा कि कुछ और भी सीखा या यही सीखा, पहले स्वामी जी के और गुण तो सीखे होते। किन्तु इन सिर हिलाने वाले बड़े-बूढ़े को कौन बताए कि दयानन्द बनने के पहले मूल शंकर पहले भागे ही थे।

न मालूम इन बिचारे लड़कों को इस दुरंगे झंझट में क्यों डाला जाता है। बचपन से बतलाया जाता है कि सच बोलना बहुत ही अच्छा गुण है, विद्या प्राप्त करने से आत्मा की उन्नति होती है, संसार में जीवन का उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना है। ये तो रहीं कहने की बातें। जब करने का मौक़ा आता है तो फिर दूसरी ही बातें काम आती हैं। कहीं ऐसे सच्चे बनने से दुनिया में काम चलता है, इस पढ़ने से क्या लाभ जो

रोटी कमाने के काम न आवे। अरे भाई रुपये से सब सुख प्राप्त हो सकते हैं। वाह, क्या निराली दुनिया है।

सच पूछिए तो लोगों ने अपने जीवन को एक बड़ा भारी झूठ बना लिया है। ज़रा ज़रा सी बातों में लोग दुहरे कोट रखते हैं, जब चाहा जैसा बदल लिया। एक ओर देश के उद्धार के लिए जीवन दान देने पर व्याख्यान दिया जा रहा है, दूसरी ओर लड़के को डिप्टी कलेक्टरी दिलाने की कोशिश की जा रही है। एक ओर पुस्तकों की बड़ाई की जाती है, दूसरी ओर पुस्तकों में व्यर्थ धन नष्ट करने से रोका जाता है। एक ओर गाँधी जी के खादी के आदर्श की प्रशंसा और दूसरी ओर सूट के लिए काशी सिल्क देना। अजब दुरंगी दुनिया है।

क्यों नहीं बचपन से बतलाया जाता कि तुम्हें रुपया कमाने के लिए पाला व पढ़ाया जा रहा है। जितना ही अधिक रुपया कमाने के योग्य तुम अपने को बना लोगे उतने ही अधिक तुम हमारे आदर के पात्र होगे। क्यों नहीं बचपन से बतला दिया जाता कि जीवन का उद्देश्य जिमीदारी करना, इंजीनियरी करना या डिप्टी कलेक्टरी करना है। बचपन से ही झूठ बोलने के अच्छे से अच्छे तरीक़े सिखला दिए जायें, जिससे फिर लड़कों को बड़ी उमर में दिक्कत न पड़े। सीधे और चुप्पे लड़कों की बुराई, व चालाक और बातून लड़कों की तारीफ़ करनी चाहिए। इन बातों का बड़ी उमर में सीखना ज़रा मुश्किल हो जाता है। श्री रामचन्द्र, शिवाजी व लोकमान्य तिलक के बजाय लालबहादुर, छोटेलाल, साहू भिखारीलाल व आडिट आफ़िस के मशहूर हेड क्लर्क बाबू रामसहाय की जीवनी लाखों छाप छाप कर हर लड़के के हाथ में देनी चाहिए। इन्हीं की नक़ल तो वास्तव में लड़कों से करानी है।

दुनिया बहुत झूठी है। उसमें संतोष नहीं होता।

१२. अविश्वास

छोटेपन में मेरे हृदय में संसार का बहुत आदर था। मैं समझता था कि यहाँ कोई सच्ची जीत, खुशी व बड़प्पन प्राप्त हो सकते हैं। मैं समझता था कि सांसारिक विद्याएँ आत्मा की उन्नति का अंत नहीं तो सीढ़ी अवश्य ही हैं। किन्तु धीरे-धीरे सच्चा ज्ञान—सच्चा क्यों कहिए दूसरी तरह का ज्ञान—होता गया। अब तो संसार मेरी नजर में बहुत ही साधारण और तुच्छ मालूम होता है। नेलसन की ट्रैफलगर की जीत अथवा वाटरलू पर नेपोलियन की हार सचमुच कोई खास बातें नहीं थीं। स्वतन्त्रता की पुकार व देश के लिए मर जाना आदमी की कुछ न कुछ करने की वृत्ति में से एक है। दर्शन, कविता, धर्म आदि मनुष्य की बहुत सी कमजोरियों में से कुछ हैं। हाँ, किसी को दस बीस बरस के लिए बड़ा होना हो तो वह हो सकता है।

× × ×

दुनिया का हर एक धर्म, हर एक विश्वास, हर एक काम, हर एक विद्या इसी दुनिया के सुख बढ़ाने के लिए है। ईश्वर, परलोक व कर्मफल मानने से यहाँ संसार में सुख बढ़ता है इसीलिए वे मान्य हैं। 'ईश्वर के मानने से सुख बढ़ता है' इस प्रकार समझाने में उतना लाभ नहीं हो सकता जितना बिना यह जाने हुए उसे मानने से होता है। इसके विपरीत जिस बात से संसार में दुःख बढ़े वह पाप कहलाती है। उदाहरणार्थ सत्य न बोलने से प्रायः संसार में कष्ट होता देखा गया है इसीलिए उसे पाप कहते हैं। कभी कभी सत्य न बोलने से

भी लाभ होता है ऐसी हालत में झूठ को ही ठीक व पुण्य बतलाया जाता है। इसी दुनिया के हानि लाभ को देखते हुए सब विश्वासों की सृष्टि हुई है। कदाचित् कोई नित्य सचाई नहीं है।

× × ×

इसका कारण क्या है कि लोग ऐसी बातों के करते हुए भी जो संसार में बुरी समझी जाती हैं अपने काम को बुरा नहीं समझते हैं। कदाचित् बात यह है कि कोई भी काम स्वयं बुरा व अच्छा नहीं है—मेरा मतलब व्यक्तिगत कार्यों से है। जैसे कुछ लोग शराब पीने में कुछ दोष नहीं समझते, बल्कि बहुत ही खुश होते हैं। क्या यह खुशी सच्ची खुशी नहीं है? अवश्य है। किन्तु इस खुशी के साथ साथ बहुत सी बुराइयाँ और खराबियाँ भी होने लगती है। समाज को ठीक से चलाने में अड़चनें पड़ने लगती हैं। इसीलिए शराब पीना बुरा समझा जाता है और उसे पाप समझा जाता है। हर एक काम—चाहे वह संसार में अच्छा समझा जाता हो या बुरा—जिससे आदमी को सुख मिले स्वयं अच्छा है, यद्यपि बाद को या दूसरे आदमियों के लिए हानिकारक होने के कारण दुनिया के क़ानून में वह बुरा ही क्यों न गिना जाता हो।

१३. डूबते का सहारा

मैं बहुत दिनों संदेह में रहा। संदेह में दुख अधिक है। इसलिए अच्छा यही है कि आदमी कुछ न कुछ अपना उद्देश्य निश्चित कर ले और उसी के अनुसार कार्य करे। प्रारंभ में मैं कुछ उद्देश्यों को लेकर चला था। मैं सुखी था, आशापूर्ण था। बीच में मैं एक प्रकार की नास्तिकता में पड़ गया था। वह झूठी है यह मैं अभी भी कहने को तैयार नहीं। संसार की गतिविधि देख कर मुझे सत्य असत्य, धर्म अधर्म, व नियम अनियम में कुछ भेद नहीं मालूम पड़ता था—और अब भी कोई सच्चा भेद नहीं दिखलाई पड़ता है। संसार में अन्याय को पनपता देखकर मैं विश्वास करने लगा था कि ईश्वर जैसी कोई चीज नहीं है। मन की उस अवस्था में मुझे सहारा भी कोई नहीं मिल पा रहा था, यद्यपि मैं अंदर से सदा यही इच्छा करता था कि कोई सहारा मिल जाता।

किन्तु इस अन्दर के तूफ़ान के समय में भी, जब मेरा विश्वास प्रत्येक बात से उठ गया था, केवल एक बात पर विश्वास अटल रहा और वह थी सदाचार की उच्चता। यद्यपि मैं दुराचार को वास्तविक पाप नहीं कह पाता था किन्तु सदाचार को सचमुच प्रशंसनीय समझता था, चाहे मैं अपने विचार के अनुसार सदा चल न भी पाऊँ। मेरी आत्मा अंदर से बहुत सी बातों से घृणा करती थी किन्तु मुझे बतलाया जाता था कि ये बातें संसार में रहकर करना आवश्यक हैं, जैसे बनावट, दुनियादारी आदि। मैं देखता भी था कि इसी प्रकार की बातों के द्वारा सचमुच लोग संसार में सुखी भी

पाये जाते हैं और उनसे उलटे आदमी कभी कभी दुखी भी मिलते हैं। जब ऐसा है तो फिर क्यों न दुनियादार व स्वार्थी बनने का यत्न किया जाय? क्यों व्यर्थ को सचाई का ढोंग रचा जाय? जब कि सचाई और झूठ दोनों ही बराबर हैं तो क्यों सच ही के पीछे पड़ा जाये। लेकिन झूठे व्यवहार से मेरी आत्मा घृणा करती थी। इस युद्ध में आत्मा की निर्बलता के कारण मैं हताश होकर सब काम छोड़ कर बैठ गया था।

बहुत दिनों बाद मुझे अब एक सहारा मिला है जिससे काम में लगने को मैं फिर तत्पर हो रहा हूँ। वह सहारा यह है कि सच और झूठ में भेद न मानते हुए भी मुझे अपने विचारों को कार्यरूप में परिणत करने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए। मेरे विचार संसार के व समाज के नियमों के विरुद्ध नहीं हैं, व्यक्तिगत विचारों के चाहे विरुद्ध हों, अतः मुझे विशेष कठिनाई भी नहीं पड़नी चाहिए। फिर सुख ही तो मनुष्य जीवन का उद्देश्य है। मुझे *अपनी* आत्मा के अनुसार चलने में ही सुख मिल सकता है—इस समय की रुकावटें भी सुख ही देती हैं—फिर मैं क्यों न *अपनी* इच्छा के अनुसार कार्यों का प्रारंभ करूँ? उन लोगों को दिक्कत पड़ सकती है जिनकी आत्मा झूठ को पसंद करती हो। क्योंकि यह विचार संसार व समाज के नियमों के विरुद्ध होगा इसलिए यह संघर्ष व दिक्कत पैदा करेगा। मैं ऐसे आदमियों को तभी आदर की दृष्टि से देख सकता हूँ जब वे अपनी आत्मा के अनुसार झूठ का आचरण करें। इन्हें सुख तभी मिल सकता है और मिलते देखा गया है। असली डाकू को फाँसी पर चढ़ते समय दुःख नहीं होना चाहिए।

मेरी आत्मा सदाचार में, सत्य में, परोपकार में, निष्काम भाव में, सरलता में दृढ विश्वास करती है, अतः मैं इन्हीं से

सुखी हो सकता हूँ, फिर क्यों न मैं इनके अनुसार आचरण करूँ। सुख ही तो अंतिम ध्येय है। जिनकी आत्मा दुराचार, असत्य, स्वार्थ व चालाकी में विश्वास करती हो वे अपनी अपनी आत्मा के अनुसार चलें। मैं उनको बुरा नहीं कहूँगा। उन्हें उसी में सुख प्राप्त होगा व होता है। किसी तरह भी हो सुख मिलना चाहिए फिर मैं अपने सुख को क्यों छोड़ूँ? दुनिया के कारण अपनी आत्मा को तिलांजलि देने से मुझे सुख नहीं मिल सकता यह मैं देख चुका हूँ फिर मैं व्यर्थ को ऐसा करके क्यों दुःख उठाऊँ। सुख ही तो आदमी का ध्येय है न?

१५-१२-१६१८

१४. 'भावी जीवन की तैयारी'

डाक्टर तेजबहादुर सपरू ने बोर्डिङ्ग हाउज में आज 'भावी जीवन की तैयारी' (Preparation for Life) विषय पर व्याख्यान दिया था। डा० सपरू उन आदमियों में से हैं जो अपने कुछ निजी विश्वास रखते हैं और उनके अनुसार थोड़ा बहुत चलने का यत्न भी करते हैं। उन्होंने बातें तो सब साधारण कहीं किन्तु उन्हें रक्खा बहुत अच्छे ढंग से। यदि इस प्रकार के उपदेशों के अनुसार लोग चलने का यत्न किया करें तो श्रति उत्तम हो। मैं समझता हूँ कि संसार के उपदेशकों व उपदेश संबंधी पुस्तकों का लोगों के जीवन पर बहुत ही कम असर पड़ता है। लोग प्रायः सुन या पढ़ भर लेते हैं और उन्हें अच्छा समझते हुए भी आत्मा की निर्बलता अथवा समाज की हीनदशा के कारण उनके अनुसार चलने का साहस मुश्किल से कर पाते हैं।

डाक्टर सपरू ने कहा कि भावी जीवन की तैयारी के लिए प्रत्येक विद्यार्थी को चाहिये कि वह अपने ध्येय का निश्चय कर ले और उसी के अनुसार चलने का उद्योग करे। ध्येय के चुनाव के लिए अपनी तबियत के झुकाव, योग्यता व घर की अवस्था का भी ध्यान रखना चाहिए। इन बातों में अपनी तबियत का झुकाव व योग्यता मुख्य हैं। उदाहरण के लिए उन्होंने दो पेशे लिए :—१ वकालत और २ देश सेवा व समाज सेवा। उनका कहना था कि वकालत के लिए तीन बातें आवश्यक हैं :—१—मेहनत करने की शक्ति होना, २—कुछ समय तक प्रतीक्षा करने की सामर्थ्य होना और ३—बहस करने

की शक्ति होना। जिनमें ये बातें हों और जिनका इनकी ओर झुकाव हो उन्हें वकालत में अवश्य जाना चाहिये।

देश सेवा के लिए भी अपनी इच्छा व योग्यता मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त इसके लिये भी तीन बातों की आवश्यकता है :—१—आत्म त्याग का भाव, २—इतिहास, राजनीति और समाजशास्त्र का अध्ययन व मनन, और ३—आत्मिक दृढ़ता व सचाई (moral side) जिससे कठिनाई पड़ने पर घबड़ा न जाए। उन्होंने कहा कि किन्हीं विशेष आदमियों के कहने के कारण किसी बात को नहीं मान लेना चाहिए बल्कि अपनी राय स्वतंत्र रूप से बनानी चाहिए। यदि अपनी राय अन्य लोगों की राय से मिलती हो तो अच्छा है, किंतु यदि न भी मिलती हो तो भी उस पर दृढ़ रहना चाहिए। यदि किसी का उद्देश्य देश सेवा करना हो तो उसे विद्यार्थी जीवन से ही उसके लिए तैयारी करनी चाहिए। उन्होंने इस बात पर खेद प्रकट किया कि इस यूनीवर्सिटी में राजनीति शास्त्र की शिक्षा का कुछ भी प्रबंध नहीं है।

प्रोफेसर जेवन्स सभापति थे। उन्होंने जीवन के अन्तिम उद्देश्य की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने कहा कि आखिर यह सब तैयारी है किसलिए? जीवन के लिए केवल इस तैयारी करने से काम नहीं चलेगा, बल्कि लोगों को उच्च आचार का बनने का यत्न करना चाहिये। सचाई परोपकार आदि, उत्तम गुण अवश्य सीखने चाहिये। जेवन्स साहब का कहना था कि सपरू साहब ने तो समाज सम्बन्धी तैयारी के विषय में ही कहा, किन्तु व्यक्तिगत तैयारी भी अवश्य होनी चाहिये और यह उत्तम आचार से ही होती है।

२०-१२-१६१८

१५. आजकल की दुनिया के लायक शिक्षा

१. जीवन की सच्ची जरूरतों के विषय में आजकल कुछ भी नहीं सिखाया जाता। गाँव के भी स्कूलों के बड़े दरजों में कम से कम मुकदमे लड़ाना अवश्य सिखला देना चाहिए। इसके सिवाय सभी लड़कों को दावतों व महफिलों का इन्तजाम करना, लोगों से मिलने व बातचीत करने का ढंग आदि बातें भी अवश्य बता देनी चाहिए।

२. सबसे बड़ी आवश्यकता झूठ बोलने के सिद्धान्त के विषय में है। हर एक लड़के को अच्छी तरह समझा देना चाहिए कि वह यह कभी भी न कहे कि 'सच बोलना अच्छा नहीं है अथवा कभी कभी झूठ बोलना बुरा नहीं है।' सच की सदा तारीफ तथा झूठ की सदा बुराई करे, किन्तु दिल में समझ ले कि दुनिया में सदा सच से काम नहीं चलता है। संसार के व्यवहारों में कभी कभी झूठ बोलना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। झूठ के विषय में एक शास्त्र बनना चाहिए कि वह दुनिया में कब कब अत्यंत आवश्यक होता है।

३. लड़कों को बचपन से ही शान से रहने की आदत डालनी चाहिए। उन्हें बतला देना चाहिए कि खराब व अच्छे पहनावे का लोगों पर बहुत असर पड़ता है। सादगी के बजाय शान अधिक लाभदायक है।

४. कुछ बड़े होने पर उन्हें दुनिया का यह बड़ा सिद्धान्त बतला देना चाहिए कि संसार में सदा बलवान कमजोर को खा जाता है। कमजोर यदि बलवान से भी अधिक बलवान हो जाय तो वह उसे खा जाएगा। दूसरे दुनिया स्वार्थ पर टिकी है। किन्तु यह सब कहते-फिरने की जरूरत नहीं है।

तुमसे यदि कोई कमज़ोर हो तो उसे शौक से खा जाओ, किन्तु बाहर से बहुत अफ़सोस ज़ाहिर करो। कह दो कि तुमसे उसकी इससे अधिक भलाई और कुछ नहीं हो सकती थी।

५. अपनी तारीफ़ करना आजकल अत्यंत आवश्यक है, शील व संकोच कोई अच्छी आदतें नहीं हैं। लेकिन इस बात का ख्याल रक्खे कि लोग ऊब न जाएँ। संसार में चतुराई की अत्यंत आवश्यकता है। सीधेपन और मूर्खता में कोई अन्तर नहीं है।

६. दुनिया में कोई भी बुराई बुराई नहीं है, यदि आदमी उसे सफलता के साथ कर सके। चोरी करने में कोई हर्ज नहीं है, किन्तु चोरी करते हुए पकड़े जाने में बहुत खराबी है।

७. लड़कों का समय कविता, नाटक, कहानी आदि व्यर्थ की पुस्तकों को पढ़ाने में नष्ट नहीं करना चाहिए, चित्रकला अथवा संगीत की शिक्षा देना व्यर्थ है। हाँ इन सबके बारे में ऐसी बातचीत करना अवश्य सिखला देना चाहिए कि जिससे लोग समझें कि आप साहित्य और कला के मर्मज्ञ हैं।

८. अन्त में लड़कों के कान में यह मूल मंत्र फूँक देना चाहिए कि धन और नामवरी ही सुख के मूल हैं। किन्तु साथ ही कहना सदा यह कि सत्य और धर्म पर संसार क़ायम है।

दुनिया के लिए ऐसी ही शिक्षा की आवश्यकता मालूम पड़ती है और ऐसे ही आदमी सफलता प्राप्त करते देखे गए हैं। किन्तु मेरी आत्मा इन बातों से अत्यंत घृणा करती है, मैं स्वयं ऐसा बनना कदापि नहीं चाहूँगा। दूसरों के ऐसा बनने को मैं बुरा नहीं कह सकता, यदि वे इन बातों को अच्छा समझते हों।

४. ५. १९१९.

खंड २

संसार

(१९१९-२१)

१. एक योजना

आज लगभग एक वर्ष बाद लिखने बैठा हूँ। इस बीच बहुत से लौट पौट हुए। बी० ए० की परीक्षा के बाद गरमी की छुट्टी बहुत उत्साह के साथ आरंभ हुई। बड़े-बड़े विचार थे। देश में शिक्षा प्रचार की स्कीम उन दिनों नई नई दिमाग में घूम रही थी। यह निश्चय करके घर गया था कि इस कार्य का आरंभ अवश्य इसी छुट्टी में कर दूँगा। किन्तु कोई भी इस स्कीम में सहायता देने वाला नहीं था। उलटे इसको असंभव साबित कर दिखाने वाले बहुत से थे। पहले पहल जिससे मैंने यह विचार प्रकट किया और जिससे मुझे बहुत कुछ सहायता की आशा थी उसी ने इसे बिलकुल असंभव बता कर टाल दिया। मेरा दिल टूट गया। हर एक काम में कठिनाइयाँ होती हैं फिर इस वचनमात्र की रुकावट से मैं क्यों रुक गया यह मेरे ही मन की दुर्बलता को चरितार्थ करता है। जो हो इस संबंध में धीरे-धीरे उत्साह घटने लगा और थोड़े दिनों में यह विचार लगभग लुप्त हो गया।

ये वे दिन थे जब सत्याग्रह प्रारम्भ हो चुका था और देश भर में एक प्रकार की सनसनी फैली हुई थी। उसके बाद ही पंजाब में ज़ुल्म शुरू हो गए और सरहद पर भी लड़ाई छिड़ गई। उन दिनों सब समय अखबार पढ़ने और उसी संबंध में बातचीत करने में कटता था। इतने चाव से मैंने अखबार कभी नहीं पढ़े। स्कीम का विचार समाप्त हो जाने पर भी एक प्रकार की जागृति बनी रही।

३.१२.१९१९

२. मेरे वर्तमान धार्मिक विश्वास

धर्म के विषय में मेरे विश्वास अब कुछ निश्चित अवस्था को पहुँच गए हैं। इसका यह मतलब नहीं कि अब ये बदलेंगे ही नहीं। कदाचित् बहुत अन्तर हो जावे। अब तक जो इस विषय में विचार थे वे मेरे पालने वालों के विचार थे। अब ये मेरे अपने विचार कहे जा सकते हैं।

ईश्वर को मानना मैं उपयोगी (expedient) समझता हूँ और उसकी पूजा को भी मैं ऐसा ही समझता हूँ। बहुत बड़े आदमी ईश्वर को न भी मानें तब भी हर्ज नहीं है किन्तु साधारण लोगों को व देश को ईश्वर के मानने ही से अधिक लाभ है। इससे एक प्रकार का आत्मिक बल, कठिनाई में सहारा व ग़लत काम करने में भय रहता है। यों इस प्रकार की किसी शक्ति में विश्वास आदमी की दुर्बलता प्रकट करता है।

किसी भी पुस्तक को इतिहास अथवा ईश्वरीय ज्ञान मानना मेरी समझ में नहीं आता। पुस्तक की पूजा एक प्रकार से मूर्तिपूजा के समान है। यह वास्तव में निम्नकोटि के मनुष्यों के लिये हैं। ऐसा विश्वास स्वतंत्र विचार रखने, सोचने और प्रकट करने में बाधक होता है।

अनेक प्रकार के कल्पित देवताओं तथा मूर्तियों की पूजा भी नीचे स्तर की बात है। मेरी समझ में नहीं आता कि कोई भी पढ़ा लिखा आदमी इस प्रकार की पूजा में वास्तव में कैसे विश्वास कर पाता है।

आत्मा के अमरत्व में अभी तक मेरा विश्वास नहीं हो पाया है। यदि आत्मा अमर होती तो होता बहुत अच्छा।

साथ ही यदि अगले जन्म में स्मृति बनी रहती तो मनुष्य उन्नति की पराकाष्ठा को पहुँच सकता। किन्तु मन समझौते के सिवाय इसका कोई अकाट्य प्रमाण नहीं दिखलाई पड़ता। न मेरा अपना विश्वास पुनर्जन्म और कर्मों के फल मिलने में हो पाया है। मैं इस जन्म में ही कर्मों के फल में अवश्य विश्वास करता हूँ और उद्योग को ही समस्त कर्मों का कारण मानता हूँ। पुनर्जन्म के विषय में मनुष्य वास्तव में कुछ नहीं जानता है, अतः इस विषय में तर्क वितर्क करना समय नष्ट करना है। परलोक में विश्वास करने से आदमी आलसी, निखट्टू और हर समय डरने वाला हो जाता है। यह अवश्य है कि परलोक के भय के कारण मनुष्य बुरे कर्म करने में अवश्य झिझकता रहता है। किन्तु इस विश्वास से लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होती है।

अवतार व पैगम्बर आदि में कोई भी बुद्धि रखने वाला आदमी कैसे विश्वास कर सकता है यह मेरी समझ के बाहर की बात है। स्वस्थ समाज बनाने में इस प्रकार के विश्वास बहुत बड़ी बाधा हैं।

धर्म के नाम से ईश्वर, जीव और परलोक के विषय में तर्क वितर्क करने की अपेक्षा व्यक्ति और समाज दोनों के हित की दृष्टि से मैं आचार के संबंध में सोचने व तदनुसार कार्य करने को अधिक उत्तम समझता हूँ। सदाचार के नियमों में आदर्श स्वरूप यम और नियम हैं—अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहः यमाः। शौचसन्तोषतपः स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधानानि नियमाः। इनमें भी सत्य, ब्रह्मचर्य और अहिंसा विशेष ध्यान देने योग्य हैं। इनमें भी प्रथम दो की अत्यन्त उच्च आदर्श अवस्था में मैं विश्वास करता हूँ। सदाचार को ही मैं सच्चा धर्म समझता हूँ।

वीरपूजा जैसे दशहरा आदि को मैं उत्तम समझता हूँ। देश के लिए ये विशेष लाभदायक हैं।

त्योहारों—जैसे होली, दिवाली, रक्षाबन्धन आदि—को भी मैं अच्छा समझता हूँ। व्रत और पूजा आदि भी कुछ दूर तक उपयोगी व आवश्यक हैं। कुछ नहीं तो इनसे अच्छा समय ही कट जाता है।

निष्काम सेवा भाव और सुपात्र में दान को मैं मनुष्य का अति उत्तम भूषण समझता हूँ और इनमें मेरा पूर्ण विश्वास है।

अग्निहोत्र मुझे प्राचीन वैदिक कालीन जीवन का स्मरण दिलाने के कारण अच्छा लगता है। इसके सिवाय इससे स्वास्थ्य संबंधी लाभ भी होता है। देखने में भी यह कर्मकांड सुंदर मालूम पड़ता है।

तीर्थयात्रा में मैं विश्वास नहीं करता, किन्तु देशाटन में करता हूँ।

सब धर्मों में मुझे प्राचीन वैदिक धर्म अधिक रुचिकर है। धर्म होने के कारण रहने वाली खराबियाँ इसमें कम से कम पाई जाती हैं। एक राष्ट्र के लिए यह आवश्यक है कि इसके व्यक्ति साधारणतया एक ही धर्म के अनुयायी हों। इसी में देश और व्यक्ति का लाभ है। अन्य विदेशी वस्तुओं के समान विदेशी धर्मों का प्रचार भी राष्ट्र के हित की बात नहीं होती।

१२. १. १६२०

३. आजकल की शिक्षा में कमी

आजकल की शिक्षा में—शिक्षा का अर्थ केवल स्कूल व कालेज की शिक्षा से नहीं है—गलत बातों पर जोर अक्सर दिया जाता है। जैसा रिवाज पड़ जाता है उससे लोग प्रायः मुश्किल से हट पाते हैं।

शिक्षा में मुख्य ध्यान इस बात पर देना चाहिए कि देश व समय के अनुसार व्यक्ति की शक्तियों का पूर्ण विकास हो। देश की भाषा शुद्ध लिख सकना, पढ़ सकना व बोल सकना तो शिक्षित कहलाने वाले व्यक्ति के लिए आवश्यक है ही। साहित्य के संबंध में बातचीत कर सकने की योग्यता रखना ऊँची सोसायटी में फैशन समझा जाता है। स्कूल व कालेज की पाठ्य पुस्तकों को बहुत रटने से विशेष लाभ नहीं होता है, यदि परीक्षा में ऊँचा स्थान पाना ध्येय हो तो दूसरी बात है। कुछ न कुछ कार्य करते रहने में प्रेम व रुचि अवश्य पैदा करनी चाहिए। उद्योग सफलता की कुंजी है। आलस्य अत्यंत हानिकर है। किन्तु यह परिश्रम की अभिरुचि केवल पुस्तकों के रटने में नहीं लगानी चाहिए।

शरीर सुंदर और दृढ बनाना हर एक व्यक्ति का लक्ष्य होना चाहिए। खेलों (games) में—यदि स्वभाव से उनकी ओर झुकाव हो तो—भाग लेना अच्छा है, नहीं तो कोई विशेष लाभ नहीं। लोगों से व्यवहार तथा बातचीत करने की शिक्षा विशेष रूप से मिलनी चाहिए। इस से आजकल की दुनिया में बहुत लाभ होता है। ठीक ठीक कपड़े आदि पहनना भी

सिखलाना चाहिए। बुरी तरह रहना उन्नति में अक्सर बाधा डालता है।

गलत बातों पर जोर देने से यह मतलब है कि जैसे सचाई पर कहने में बहुत जोर दिया जाता है, किन्तु अक्सर चतुर झूठे आदमी दुनिया में तरक्की करते देखे जाते हैं। सीधेपन की भी बड़ी तारीफ होती है किन्तु सच पूछिए तो यह प्रशंसा जीभ भर की है। वास्तव में आजकल सीधा होना मूर्खता है। चतुराई की जीवन में क़दम क़दम पर आवश्यकता पड़ती है। इसी तरह सादगी की भी तारीफ़ होती है, किन्तु इसमें भी कुछ तत्व नहीं है। आज कल सफलता सादगी की निस्बत शान से अधिक प्राप्त होती है। पुराने लोग आचरण पर बहुत जोर देते हैं। सच पूछिए तो यदि आप अति नहीं करते हैं और क़ानून के पेंच में नहीं आ जाते हैं तो आजकल की दुनिया में इसका भी विशेष महत्व नहीं रह गया है।

मेरा यह मतलब कदापि नहीं है कि ऊपर दी हुई बातें अच्छी नहीं हैं। ये बातें अच्छी अवश्य हैं किन्तु जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए इनकी आवश्यकता गौण रूप में पड़ती है, अतः इन पर बहुत जोर नहीं देना चाहिए। ऊपर प्रारंभ में दी हुई बातें सफल जीवन के लिए अधिक आवश्यक हैं, किन्तु इन पर प्रायः बहुत कम जोर दिया जाता है। आपकी समस्त बुराइयों को दुनिया आपमें किसी भी एक उत्कृष्ट गुण होने से भुला देगी।

×　　　　×　　　　×

अपने मित्र शिवजी के विवाह में जाना हुआ था। मेरे ख्याल में जिन्हें संसार में रहना है उन्हें विवाह आदि पारिवारिक संस्कारों में अवश्य शरीक होना चाहिए। इन अवसरों

पर मिलने-जुलने से सम्बन्ध घनिष्ठ होते हैं। समय तो आनन्द से कटता ही है। जो बहुत काम करने वाले लोग हैं उन्हें कभी कभी बारातों आदि में जाने से आराम मिल सकेगा। शारीरिक कष्ट कुछ अवश्य होता है।

अपने चाचा के मुक़दमे में भी इधर कई बार जाना हुआ। कचहरी की इन्तज़ारी बहुत ही कष्टप्रद चीज है, इसका अनुभव पहली बार हुआ। कचहरी की दुनिया ही अलग है। उसके बहुत से नए रंग-ढंग मालूम हुए।

२७. १. १६२०.

४. दो नए अनुभव

पिछले दिनों दो बातों ने मुझको बहुत प्रभावित किया। पहली बात मेरे एक अनन्य मित्र के घर का भारी आर्थिक संकट था। एक रात मुझे नींद नहीं आई। मैं इनकी कुछ भी सहायता नहीं कर सका। ऐसी मित्रता से क्या लाभ।

दूसरी बात इन्हीं मित्र का काशी से लिखा पत्र था जिसमें उन्होंने इस बात का उल्लेख किया था कि यहाँ के ब्राह्मण पण्डित अब्राह्मणों को संस्कृत पढ़ाने को आसानी से उद्यत नहीं होते। मुझे पहली बार यह ख्याल गया कि ब्राह्मणों का भारत की संस्कृति पर कितना गहरा प्रभाव है। एक प्रकार से शायद एक भी बात ऐसी न होगी जिसे अब्राह्मण अपना कह सकें। धर्म, भाषा, रस्मरिवाज सब ब्राह्मणों के बनाए हैं। संस्कृत साहित्य के निर्माण में तो लगभग बिलकुल ब्राह्मणों का हाथ रहा है। यद्यपि इसमें कोई भी संदेह नहीं कि ब्राह्मणों का पोषण अब्राह्मणों ने ही किया है और आज भी कर रहे हैं, किन्तु ये सदा इन्हें तुच्छ दृष्टि से देखते रहे हैं। संस्कृति की दृष्टि से अब्राह्मणों की अब अपनी कोई हस्ती नहीं है। जब तक वेद, संस्कृत भाषा और हिंदू धर्म क़ायम है तब तक ब्राह्मण अब्राह्मणों को दबाए रहेंगे। वास्तव में भारतीय सभ्यता का अर्थ ब्राह्मण सभ्यता है, हिंदू धर्म का अर्थ ब्राह्मण धर्म है, स्वराज्य का अर्थ कदाचित् ब्राह्मण राज्य होगा।

१. १. १९२१.

५. परिवार के लोगों की चिंता

आजकल मेरा ध्यान केवल इस बात पर रहता है कि घर के लोगों को किसी तरह सुख पहुँचा सकूँ। इन लोगों को आस लगाए बहुत दिन बीत गए। आज मेरे एम० ए० पास करने पर जब वह दिन आया है कि उनकी आशाएँ पूरी हों तब मैं देश के आंदोलन में पड़ कर उनकी सब उम्मीदों पर पानी फेर दूँ यह मुझसे नहीं हो सकेगा।

माता का मुझे सबसे अधिक ख्याल रहता है। पिता जी समझदार हैं व कमाने वाले हैं। दादी की हम लोगों की ओर से लालसा कुछ कम हो गई है, फिर पिताजी उन्हीं के हैं। माता के बारे में यह कोई बात नहीं है। न उनका चित्त ठीक रहता है, न शरीर ही। अभी तक उनकी इच्छाएँ बिलकुल भी पूरी नहीं हो सकी हैं। आज तक वे मेरे ऊपर आशा लगाए बैठी थीं। देश के आंदोलन में भाग न लेने का सबसे बड़ा कारण मेरी आत्मिक निर्बलता के सिवाय माता का ध्यान है। वे अपने निर्बल मन में मेरे विषय में अनेक प्रकार के संकटों की कल्पना करके पागल हो सकती हैं। अब सबसे पहली आवश्यक बात यह है कि मुझे कुछ कमा कर परिवार के लोगों को सुखी करना चाहिए।

२७. ५. १९२१.

६. नौकरी तलाश करना

नौकरी तलाश करना भी कितना घृणित काम है कुछ कहा नहीं जा सकता। इसमें न मालूम कितनी बेइज्जती उठानी पड़ती है। नौकरी के लिए सबसे पहले सिफारिश जरूरी है। सिफारिश के लिए खुशामद करनी ही पड़ती है।

नौकरी की तलाश में जब किसी अफसर से मिलने जाना हो तो अंग्रेजी कपड़े पहन कर, तांगा व गाड़ी पर जाना आवश्यक है, जो अपने स्तर के अनुसार इन चीजों का मनुष्य चाहे व्यवहार न भी करता हो। फिर कपड़े और सवारी दोनों ही अपनी हैसियत से ज्यादः होने चाहिए। बिचारे उम्मीदवार का दिमाग रास्ते में बराबर सोचता जा रहा है कि किस तरह की झूठी और चापलूसी बातों से साहब को खुश करना चाहिए।

खैर, किसी तरह साहब के बंगले पर पहुँचे। दबे पैर डरते से आगे बढ़े। लाट साहब की तरह चपरासी ने डाट दिया कि लोग हर वक्त खड़े रहते हैं, साहब को फुरसत नहीं है, आराम कर रहे हैं। क्या करें अपना तो काम निकालना ही है। चपरासी के कंधे पर हाथ रखकर दो चार मीठी मीठी बातें कीं व उसकी मुट्ठी गरम की तो कहीं कार्ड अन्दर गया। टहलते टहलते घंटा भर बीत गया है लेकिन साहब अंदर से नहीं निकलते। हाँ, एक बार चपरासी डाँट जरूर गया है कि बाबूजी शोर न मचाइए।

किसी तरह साहब ने बुलाया। साहब काली देवी की सी आँखें किए मेज पर बैठे कुछ काम कर रहे हैं। आप सलाम के लिए दाहिना हाथ तैयार लिए खड़े हैं, लेकिन साहब सिर

ही नहीं उठाते। माथे पर शिकन डाल कर साहब ने पूछा कि किस काम के वास्ते आया है। आप 'सर' 'सर' गिड़गिड़ाने लगे। साहब ने पूरी बात बिना सुने ही डाट कर कहा, हम कुछ नहीं कर सकता, बेकार बात सुनना नहीं माँगता, चला जाओ। बाबू जी बिचारे अपना सा मुँह लिए लौट आए। चपरासी ने मुलाक़ात कराई का इनाम भी गाँठा। बेहया बाबू जी ने बंगले से बाहर निकल कर गाड़ी वाले से किसी दूसरे साहब के दरवाज़े पर चलने को कहा।

छिः छिः, जिस ज़िन्दगी का आरंभ ऐसा है वह कैसी नीच ज़िन्दगी होगी।

७. आजीविका की समस्या

मेरी कठिनाइयों का सबसे बड़ा कारण मेरा 'सेंसिटिव' (sensitive) होना है। कम से कम कठिनाइयों का प्रारंभ तो सदा इसी कारण से होता है, फिर बाद को चाहे दूसरी कठिनाइयाँ भी पैदा हो जाएँ। अब पढ़ाई समाप्त हो जाने पर जीविका ढूँढने में जो दिक्कतें पड़ रही हैं वे भी प्रायः इसी कारण से हैं। इसके सिवाय कुछ अन्य रुकावटें भी हैं। इनमें कुछ ये हैं:—

१—बचपन से ही मेरी मिलने जुलने व बातचीत करने की आदत बहुत कम थी। झूठ सच बातें मिलाना भी बुरा बतलाया गया था। इस सब का मेरे स्वभाव पर गहरा प्रभाव पड़ गया था। किन्तु नौकरी करने के लिए इससे ठीक उल्टी आदत का आदमी चाहिए तब कहीं उसे कोई ठीक नौकरी मिल सकती है है तथा वह उस पर टिक सकता है। जब तक आदमी चालाक, बातून और चापलूस न हो तब तक वह दुनिया में बड़ा नहीं हो सकता। यह सब सोच कर मैंने अन्त में शिक्षा के क्षेत्र से संबंधित नौकरी करने का विचार किया। इस क्षेत्र में सरल व सीधे स्वभाव के आदमी कुछ आसानी से घुस सकते हैं व टिक भी सकते हैं। यद्यपि तरक्की के लिए ऊपर लिखे गुण इस क्षेत्र में भी आवश्यक हैं।

२—एम० ए० का फल ठीक न होने के कारण मुझे शिक्षा विभाग के संबंध में किसी से मिलने में बहुत संकोच मालूम होता है। प्रथम डिवीजन में एम० ए० करने वालों को ही शिक्षा के क्षेत्र में आना चाहिए। इसके सिवाय मेरी संस्कृत

की योग्यता भी जितनी अच्छी होनी चाहिए उतनी अच्छी नहीं है। संस्कृत का प्रोफेसर बनने के लिए संस्कृत भाषा, साहित्य और दर्शन आदि का गंभीर पांडित्य होना चाहिए, जो मेरी समझ में मुझ में अभी नहीं है। इन सब कारणों से मैं स्वयं अपने को इस क्षेत्र के लिए बहुत योग्य नहीं समझता हूँ।

३—बचपन में ही मैंने एक बार अपनी छोटी सी बुद्धि से विचार करके निश्चय किया था कि बड़े होने पर मैं सरकारी नौकरी हरगिज नहीं करूँगा। मैं ऐसे समय में व ऐसे वातावरण में बड़ा हुआ था जिसमें यह शिक्षा क़दम क़दम पर दी जाती थी कि विदेशी सरकार बहुत बुरी चीज है व इस सरकार की नौकरी करना एक प्रकार का पाप है। अपने स्वभाव के सीधेपन के कारण इस सब में मैं वास्तव में विश्वास करने लगा। जब नौकरी करने के दिन आए तब बतलाया गया कि नौकरियों में सरकारी नौकरी सबसे उत्तम होती है, अतः उसके लिए पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए। यह नई शिक्षा ग्रहण करने में दिमाग़ को ज़रा कठिनाई होती है। अंग्रेज अफ़सरों के सामने नौकरी की भीख माँगने के लिए जाने में अंदर एक तरह की हलचल मचती है।

४—विशेषतया आजकल जब कि पंजाब के ज़ुल्मों और खिलाफ़त के आन्दोलन के बाद अपनी राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस ने विदेशी सरकार से असहयोग करने का संकल्प किया है, और जब कि नित्यप्रति हम सब लोग घर व बाहर सदा इससे सहानुभूति प्रकट करते हैं तथा बहुत उत्साह से इन सब बातों को पढ़ते हैं और उनको सराहते हैं। ऐसे समय में न सिर्फ राष्ट्रीय महासभा की आज्ञानुसार ही नहीं चलते हैं, बल्कि उसी सरकार की नौकरी करने के लिए मारे मारे फिरते हैं। एक तरफ़ शेरवानी व रङ्गा अइयर के जेल जाने की खबर

पढ़ते हैं और उस पर दुःख, क्रोध व घृणा प्रकट करते हैं तथा दूसरे ही क्षण उसी सरकार की नौकरी के लिए किसी अंगरेज अफसर से मिलने के लिए उसके दरवाजे पर इन्तजार करते हैं। इन दो अलग अलग बातों का मिलान मेरा दिमाग तो कर नहीं पाता। अगर हम लोग माडरेट दल के होते तो यह सब ठीक ही था। किंतु माडरेट दल के सदस्यों को कहने में तो हम लोग जयचंद की श्रेणी में रखते हैं किन्तु कार्य के समय हम लोगों में व माडरेटों में कोई अन्तर नहीं रह जाता है।

तब फिर प्रश्न यह किया जा सकता है कि यह सब समझते हुए भी मैं ऐसा करता ही क्यों हूँ। मैं अब बालिग हूँ, पढ़ा लिखा हूँ, परिवार के बोझ से स्वतंत्र हूँ। यह प्रश्न ठीक ही है, किन्तु कारण कुछ अवश्य ।

१—सबसे प्रथम व मुख्य कारण यह ही कहा जा सकता है कि मुझमें आत्मिक बल, विश्वास और दृढ़ता का अभाव है। मैं तो समझता हूँ कि शारीरिक बल के साथ मेरे आत्मिक बल का भी ह्रास हो गया है।

२—इसके सिवाय राष्ट्रीय कार्य करने के लिए मैं अपने को बहुत योग्य नहीं समझता। जो गुण संसार में सफलता के लिए आवश्यक हैं वे यहाँ भी चाहिए—चालाकी, बातूनपन, चापलूसी आदि। दूसरे मैं शारीरिक परिश्रम से भी घबड़ाता हूँ, विशेषतया कठिन कारागार से तो भय लगता है। फिर भला राष्ट्रीय काम कैसे हो सकता है। अपने एक मित्र के समान मैं गांधीजी को 'इस्तेमाल' करने के लिए इस क्षेत्र में जाने को उद्यत नहीं हूँ।

३—जो व्यक्ति अब तक मेरे धार्मिक, राजनीतिक व सामाजिक विचार बनाने के कारण थे व जिन पर मेरा अटल

विश्वास तथा श्रद्धा थी, अब वे वैसी ही बातें करते हुए भी कार्य करने का प्रश्न आने पर उलटी राय—समझदारी व दुनियादारी की—देते हैं। मैं उलझता हूँ व खीझता हूँ, किन्तु आत्मिक निर्बलता के कारण विद्रोह नहीं कर पाता हूँ।

४—माता पिता आदि इन बातों को नहीं समझ सकते हैं। दुनियाँ की सफलता से मुँह मोड़ कर राष्ट्रीय काम करने के कारण मेरे कठिनाइयों में पड़ने पर इन्हें दुःख होगा। मेरा दिल यह सोच कर भी उधर जाने को गवाही नहीं देता है।

यह सच है कि दृढ आत्मा इन छोटी छोटी कठिनाइयों को कुछ नहीं समझती है। किन्तु फिर मैं तो मानने को तैयार हूँ कि मेरी आत्मा दृढ नहीं है।

२२-७-१९२१

८. मेरी दादी का देहावसान

शनिवार ३० जुलाई १९२१ (सावन वदी ११, सं० १९७८) को रात्रि के ६½ बजे जिया (मेरी दादी) का देहान्त हो गया। घर के थोड़े से आदमियों में भी इस प्रकार एक के कम होने का मेरे होश में यह पहला अवसर है।

विश्वास नहीं होता कि जिया नहीं रहीं। बरसों दिन रात साथ रहने के कारण यह समझ में ही नहीं आता कि वे अब सदा के लिए चली गईं। ऐसा मालूम होता है कि जैसे वे हम लोगों के गाँव गई हों। मन चलता है कि वे यदि आ जावें तो इन सब मुसीबतों का हाल उन्हें सुनाऊँ। यद्यपि जिया की उम्र ७० वर्ष के लगभग थी (गदर में वे अपने को छः वर्ष का बताती थीं), किन्तु उनका शरीर इतना स्वस्थ था कि इतने शीघ्र उनके उठ जाने की हम लोग कल्पना भी नहीं करते थे। विशेषतया पिछले तीन चार महीने से उनका स्वास्थ्य और भी अच्छा हो गया था अतः हम लोग इस असामयिक आपत्ति का स्वप्न में भी ध्यान नहीं करते थे। पिछले अनेक अवसरों पर वे लंबी बीमार हुई थीं, किन्तु इस बार तो दो एक दिन साधारण बुखार आया था। आखिर तक हम लोग बिलकुल धोखे में रहे। ऐसा मालूम होता है कि जैसे अचानक वे हम लोगों से छीन ली गई हों।

२३ जुलाई शनिवार को सुबह वे लखीमपुर से आए हुए भाई साहब के परिचित एक ब्राह्मण देवता की रोटी बनवाने के प्रबंध में कुछ देर भीगती रहीं। दोपहर को उन्हें जाड़ा लगकर बुखार आ गया। इतवार को भी बुखार रहा।

सोमवार को उनकी तबियत ठीक हो गई, यद्यपि वे कुछ सुस्त थीं जिससे मालूम होता था कि उनकी तबियत अभी बिलकुल ठीक नहीं हुई है। घर के साधारण काम व चरखा चलाना आदि वे पहले की तरह फिर करने लगी थीं। मंगल व बुध को उनकी तबियत बिलकुल अच्छी रही। बृहस्पति की सुबह वे हम लोगों को रोटी खिलाती रहीं। मैंने हँसकर कहा कि जिया अब की उठ जल्द बैठीं। वे हटक कर बोलीं कि "ऐसी क्वाँर भाषा मत बोल।" थोड़ा सा भात खाकर वे लेट रहीं। लेटते ही थोड़ा जाड़ा देकर उन्हें तेज बुखार चढ़ आया। पिताजी दफ्तर गए थे और मैं भी दिन में कहीं चला गया था। दिन में वे बरामदे में ही लेटी रहीं। शाम को उन्हें कमरे में लिटा दिया। किसी ने बताया था कि शाम को उन्होंने अपने बाल खुद काढ़े थे। रात को बुखार तेज चढ़ा रहा। पिता जी क़रीब क़रीब रात भर जागते रहे। वे जिया के ही कमरे में लेटे। शुक्र को पिता जी को दफ्तर नहीं जाना था, क्योंकि इसी दिन से उनकी महीने भर की छुट्टी शुरू होती थी।'

बुखार यद्यपि तेज था किन्तु कोई असाधारण बात नहीं मालूम होती थी। जिया को हमेशा तेज बुखार आया करता था। इस बार प्यास कुछ अधिक अवश्य थी और शरीर में बेचैनी बताती थीं। बुखार की तेजी देखकर पिता जी ने कहा कि यदि दामोदर शर्मा वैद्य मिल जाएँ तो उन्हें लिवाते लाना, यदि वे न मिलें तो उनकी दूकान पर हाल बता कर दवा लेते आना। दोपहर को मैं वैद्य जी की तलाश में गया किन्तु कुछ दिन पूर्व उन्होंने बंगला बदल दिया था, और उनका नया बंगला बहुत ढूँढने पर भी मुझे नहीं मिला। शाम को उनकी दूकान खुलने का इंतजार करता रहा किन्तु वह नहीं खुली। अतः रात्रि में हम लोगों ने तय किया कि सुबह होते ही पं०

जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल को दारागंज से बुला कर दिखा देना चाहिए।

शुक्र की रात को पिताजी व माताजी दोनों जिया के कमरे में रहे। मुझे पिता जी ने यह कह कर सोने को भेज दिया कि यदि जरूरत हुई तो जगा लेंगे। रात्रि के १२ बजे माता जी ने मुझे जगाया। मैं फौरन उठकर जिया के कमरे में गया। जिया को एक दस्त होने के बाद कुछ बेहोशी सी आगई थी व हाथ पैर कुछ ठंडे से पड़ते जान पड़ते थे। पिता जी कुछ घबड़ा रहे थे, व माता जी हाथ पैरों में सोंठ मल रही थीं। यह असल में अंत का प्रारंभ था यद्यपि उस समय हम लोग नहीं समझ सके। किन्तु थोड़ी देर बाद जिया की तबियत कुछ सम्हल गई और तब मैं सोने चला गया।

शनिवार की सुबह मैं दारागंज वैद्य जी को बुलाने गया। वैद्य जी ने अच्छी तरह जिया को देखा। कहा साधारण पित्त का ज्वर है, यद्यपि तेज है। जिया बिलकुल होश में थीं। वैद्य जी ने जीभ देखनी चाही और उन्होंने जीभ दिखला दी। किन्तु अपनी ओर से जिया ने कुछ भी अपना हाल नहीं बताया। वैद्य जी चार चार घंटे बाद दवा खिलाने को कहकर चले गए। मैंने शाम को उनके मिलने का स्थान पूछा। उन्होंने कहा कि इसकी कोई जरूरत नहीं पड़ेगी। वे दो दिन की दवा दे गए और कह गए कि तीसरे दिन नहीं तो छठे या नवें दिन ज्वर उतर जाएगा। दिन में नौ बजे पुड़िया दी और एक बजे गोली दी। गोली देते ही उन्हें सिर व हाथों पर पसीना आना शुरू हो गया व उनकी आवाज बहुत धीमी पड़ गई। आज एक विशेष बात यह थी कि वे बिना सहारे के पैरों के बल नहीं बैठ पाती थीं। बहुत मुश्किल से हम लोग

उन्हें उठा कर चारपाई पर लिटा पाते थे। उनकी शरीर ने जैसे सत्व ही छोड़ दिया था। हम लोग यह समझे कि यह साधारण निर्बलता के कारण है। सुविधा के लिए हम लोगों ने उन्हें नीची चारपाई पर लिटा दिया।

पसीना अधिक आने व कमजोरी अधिक देखकर हम लोग चिन्तित थे। यह सोचकर कि शायद जिया को अच्छे होने में ज्यादः दिन लगें मैंने पिता जी से उनकी मौसी व मौसेरे भाई को बुलाने पर जोर दिया। पहले उन्हें एक पत्र लिखकर डाला किन्तु फिर ३½ बजे तीसरे पहर एक तार भी दे दिया। तीमारदारी में आसानी होगी केवल इसी विचार से इन लोगों को बुलाया था। इस समय तक हम लोग कुछ भी अनिष्ट होने की संभावना नहीं सोच पा रहे थे। यद्यपि प्रातः माता जी ने कहा था कि मालूम होता है जिया को बाई (सन्निपात की अवस्था) आ गई है, किन्तु वैद्य जी के विश्वास दिला जाने के कारण मैंने इस पर विश्वास नहीं किया। उनकी आँखों में कुछ बहराल अवश्य थी।

आज प्यास कुछ कम थी। वैद्य जी गुलाब व पोदीने का अर्क देने को बतला गए थे, किन्तु पसीना अधिक आने के कारण मैंने अर्कों का देना बंद कर दिया था। पसीना आने के बाद उनकी बेचैनी बहुत बढ़ गई थी। उनकी तबियत अन्दर से बहुत घबड़ाती हुई मालूम पड़ती थी। वे थोड़ी थोड़ी देर में पट्टी पकड़ कर उठना चाहती थीं। सहारा लगा कर हम लोग उन्हें उठा कर गोद में बिठा लेते थे, किन्तु वे शीघ्र ही शिथिल सी हो जाती थीं इसलिए हम लोग उन्हें फिर लिटा देते थे। एक बार हम लोगों के पानी न देने पर अलमारी में रक्खे लोटे से उन्होंने पानी अपने हाथ से लेकर पी लिया। ५ बजे शाम को मैंने दवा की तीसरी खुराक

दी। थोड़ी देर के लिए उन्हें उठा कर बिठाया और चिक पड़े हुए दरवाजे से बाहर की चीजें दिखाता रहा।

पसीना अधिक आने के कारण हम लोगों ने वैद्य जी से हाल कहना उचित समझा। वैद्य जी चौक में मिले। वे एक मीटिंग में व्यस्त थे। हाल सुनकर व मेरे पूछने पर उन्होंने कहा कि सन्निपातिक ज्वर अवश्य है, किन्तु कोई चिंता की बात नहीं है। त्रिदोष बढ़ गए हैं। जिस सन्निपात ज्वर में दोष घट जाते हैं उसमें अधिक भय होता है। मेरे यह पूछने पर कि कोई शीघ्र डर की बात तो नहीं है उन्होंने कहा कि सुबह नब्ज इतनी अच्छी थी कि एक सप्ताह तक तो कोई डर नहीं है। वैद्य जी ने अभ्रक भस्म की तीन पुड़ियाँ दीं और कहा कि यदि कमजोरी अधिक देखो तो एक पुड़िया अभी तुलसीदल के अर्क में दे देना, दूसरी दो घंटे के बाद दे देना, और तीसरी यदि जरूरत हो तो सुबह चार बजे देना यद्यपि उसे देने की जरूरत नहीं पड़ेगी। यदि हाथ पैर ठंडे होते देखो तो पुरानी रुई से सेंक देना। यदि पसीना अधिक आवे तो कैफल और जली हुई अरहर की दाल को पीस कर उसकी अच्छी तरह मालिश करना। बोर्डिङ्ग हाउस से तुलसीदल लेता हुआ ७½ बजे शाम को मैं घर लौटा।

जिया की तबियत मालूम हुआ कि ६ बजे से अधिक खराब होने लगी थी। उनकी साँसें तेज चल रही थीं। पिताजी किसी वैद्य को बुलाने गए थे। माता जी खड़ी रो रही थीं। घर का पहाड़ी नौकर कहने लगा कि बाबूजी, माई जी जा रही हैं। अब मैं पहली बार समझा कि जिया सचमुच जा रही हैं। मैंने जल्दी से वैद्य जी की पुड़िया दी व कैफल और अरहर की दाल पिसवा कर मालिश शुरू करवाई। यद्यपि माता जी ने कहा कि यह सब व्यर्थ है किन्तु मैं अब भी निराश नहीं था।

वैद्य जी के न मिलने के कारण पिताजी लौट आए। अन्त में राय हुई कि किसी को दिखलाना अवश्य चाहिए। मैं कटरे के एक वैद्य व्यास जी को बुला लाया। उन्हों ने देख कर साफ़ साफ़ कहा कि दान पुण्य कराना चाहिए तो भी मैं दवा देता हूँ इसे दीजिए, यदि मुश्क मिल जाये तो बहुत अच्छा है। यह समझ कर कि मैं थक गया होऊँगा पिता जी बोले कि तुम अब यहाँ बैठो मैं मुश्क लेने जाता हूँ। किन्तु मुझसे यह अंतिम समय का कष्ट देखा नहीं जा रहा था अतः मैंने अपने बाहर जाने पर जोर दिया। कटरे में किसी भी दूकान पर मुश्क नहीं मिला। आकर मैंने पिता जी से कहा। हम लोगों की राय हुई कि यदि मिल सके तो चौक से लाना चाहिए। व्यास जी कह गये थे कि ठीक कहा नहीं जा सकता कि अंत समय में कितनी देर लगे—एक दो घंटा लगे व सुबह हो जाए। मैं फ़ौरन चौक गया। हकीम रामकृष्ण की दूकान बंद थी अतः इनके बराबर के मतब से एक रत्ती मुश्क ६०) तोले के भाव से लिया। मतब के हकीम ने बताया कि ऐसी हालत में जवाहर मोहरा मुश्क से भी ज्यादा अक्सीर साबित होता है। आधी रत्ती २००) तोले के भाव से यह भी एक खुराक लिया। ६¾ बजे रात को घर लौटा। इस बीच पिताजी के एक मित्र दो डाक्टरों को लाए थे और एक की दवा भी दी जा रही थी।

जिया इस समय आखिरी साँसें जोर जोर से मुँह से ले रही थीं। उनकी आँखें खुली हुई थीं यद्यपि उन्हें शायद देख नहीं पड़ता था। वे कुछ सुनती अब भी थीं। मैंने जल्दी से जवाहर मोहरा अदरख के अर्क़ में दिया लेकिन अर्क़ कम होने से शायद वह उनके हलक़ के नीचे नहीं उतरा। यों ७½ बजे दी हुई दवा उन्होंने खाई थी यद्यपि निगलने में

उन्हें कष्ट हुआ था। सहसा उन्होंने दो तीन बार दोनों हाथ ऐंठ ऐंठ कर चारपाई पर पटके। इसके साथ ही नब्ज व धड़कन रुक गई। ९३ बजे उन्होंने साँस लेना भी बंद कर दिया। हम लोग यह देखने को नीचे झुके कि क्या वे उसाँस लेने वाली हैं, किन्तु वे सदा के लिए चल बसी थीं। कुछ ही समय पूर्व माता जी ने उनसे ओ३म् कहने को कहा था और उनके होंठ भी चलते मालूम पड़े थे जैसे वे ओ३म् ओ३म् कहने का यत्न कर रही हों। पिताजी व माता जी ने सिर व पैर की ओर हाथ लगाकर व मैंने बीच में सहारा देकर उन्हें ज़मीन पर ले लिया। जिया ने दो अंतिम साँसें ज़मीन पर लेटने के बाद भी लीं। माता जी बाहर जाकर बेहोश हो गईं।

हम लोगों ने माता जी को दूसरे कमरे में लिटा दिया और उनके पास पिता जी के मित्र की भेजी हुई महराजिन को छोड़ दिया। मैं व पिता जी रात भर जिया के कमरे में बैठे रहे। पहाड़ी नौकर भी वहाँ ही लेटा। सुबह होने पर मैंने लोगों को इत्तिला दी। खबर पाते ही बोर्डिङ्ग हाउस से कई साथी आ गए। पिता जी के भी कई मिलने वाले आ गए। यह अच्छा था कि इतवार होने के कारण लोगों की छुट्टी थी। बोर्डिङ्ग का नाई साथ में गया। पिता जी के दो तीन मिलने वाले पहले ही गंगा जी पहुँच गए थे। अन्त्येष्टि कर्म दोपहर के बाद तक चला। हम लोग करीब ३३ बजे घर लौटे। दूसरे दिन सोमवार की सुबह को पिताजी की मौसी व मौसेरे भाई आ गए थे। शुद्धि का हवन दसवें दिन सोमवार ८ अगस्त को हुआ। उस दिन कुछ कपड़े, बरतन, फल, मेवा, नाज, तरकारी आदि अनाथालय को भेजे गये।

जिया क़रीब क़रीब सुख से अपने अंतिम दिन बिता रही थीं। हम लोग यह समझते थे कि अभी चार पाँच वर्ष तो

अवश्य ही रहेंगी और वे भी शायद ऐसा ही समझती थीं। यों उनको किसी भी बात की उत्कट इच्छा नहीं रह गई थी। मेरी नौकरी व विवाह की बात होने पर वे कह दिया करती थीं कि कौन जाने हमें देखने को बदा है या नहीं, तुम लोग खुश रहो हम तो यही चाहते हैं। कुछ दिनों से उन्होंने किसी भी बात के लिए उत्कंठा दिखाना छोड़ दिया था। उनके गुणों के बारे में क्या कहूँ। पिता जी के लिये वे पिता की तरह थीं। मुझे क़रीब क़रीब उन्होंने ही पाला था। समझदारी में मैंने उनके बराबर आज तक कोई अन्य स्त्री नहीं देखी। प्रबंध करने में वे पुरुषों से भी अधिक दक्ष थीं। काम करने की रुचि उनकी इतनी अधिक थी कि वे खाली बैठना जानती ही न थीं।

२६-८-१६११

६. मृत्यु का भय

मेरा अनुभव यह हो रहा है कि मृत्यु के दुःख को आदमी इसलिए धीरे धीरे भूल जाता है कि अन्तिम समय के कष्टों की तसवीर धुँधली होती जाती है। मेरे हृदय में सबसे अधिक उद्वेग जिया के अन्तिम दिन की असह्य आन्तरिक वेदना को याद करके होता है। उसका स्मरण आते ही वह पीड़ाजनक दृश्य चित्र की भाँति आँखों के आगे खिंच जाता है। वास्तव में मृत्यु में बहुत ही कष्ट होता है।

मैं तो मृत्यु से बहुत डरने लगा हूँ—अपने लिए भी और दूसरों के लिए भी। पिछली बरसात में जब शहर में ज़ोर का हैज़ा फैला था तो एक रात पेट गड़बड़ हो जाने के कारण मुझे बहुत भय लगा। समझता था कि मौत आ गई। माता पिता को देखकर अक्सर ध्यान आता है कि किसी दिन ऐसे ही हृदय विदारक दृश्य फिर देखने होंगे। कैसे देखा जायगा। यदि मनुष्य को बहुत से आदमियों की मृत्यु देखने का अवसर मिले तो शायद उसका दिल पोढ़ा हो जावे।

जब मैं बाजार व मेलों में हज़ारों स्त्री, पुरुष और बच्चों को देखता हूँ तब कुछ ढाढस अवश्य होती है कि ये सब भी एक दिन मर जावेंगे, फिर व्यर्थ के लिए डरना क्या। जब सुंदर तेज़ घोड़े, रंग बिरंगी चिड़ियाँ व तितलियाँ और अनगिनती चींटी व कीड़े मकोड़े देखता हूँ तो भी अक्सर मुझे मृत्यु का स्मरण हो आता है कि यह सब तमाशा कितने शीघ्र खत्म हो जावेगा। कर्त्ता की बुद्धि पर विशेष क्रोध मुझे तब आता है जब मैं संसार में देखता हूँ कि तरह तरह की इच्छाएँ

और ऊँचे-ऊँचे विचार रखने वाला और उनको कार्य रूप में परिणत करने के उद्योग में लगा हुआ मनुष्य तो क्षण भर में नष्ट हो जाता है किन्तु किवाड़ की कील, लकड़ी की चौकी व सूखा पत्ता मनुष्य जीवन की अपेक्षा अधिक दिनों तक और बाद तक बना रहता है। संसार का अजब खेल है।

जिया की मृत्यु देखने के कारण ही इस संबंध में पिछले दिनों अक्सर ध्यान आता रहा है। नानाजी की मृत्यु के बाद भी लगभग एक वर्ष तक मेरा चित्त उद्विग्न रहा था। जिन लोगों के उठ जाने से भविष्य कष्टमय हो जाता होगा उनकी मृत्यु और भी अधिक कष्टप्रद होती होगी, जैसे पति के मर जाने पर स्त्री की अवस्था। उनको तो ऐसा लगता होगा जैसे मानों हाथ पैर ही कट गए हों। इस संबंध में पुराने सामाजिक नियमों में अवश्य परिवर्त्तन होना चाहिए। बच्चों और अपाहिजों को छोड़कर और किसी भी मनुष्य की दूसरों के सहारे रहने की स्थिति समाज में नहीं होनी चाहिए। पुराने नियम तो उस समय के हैं जब लोग दीर्घायु होते थे और देश धन-धान्यपूर्ण था। अब तो अवस्था ही बदल गई है।

११.११.१९२१

१०. हथियार डाल देना

राष्ट्रीय आंदोलन में भाग न लेने के कारण मेरे हृदय में कभी कभी भारी संग्राम होने लगता है। जब हम पढ़े लिखे व समझदार लोगों ने ही कायरता दिखाई है तब औरों से क्या आशा की जा सकती है। सच तो यह है कि 'भले घरों के पढ़े लिखे लोगों ने' बहुत ही भीरुता दिखाई है। इनसे तो अधपढ़े साधारण आदमी ही अच्छे निकले। जब मैं अपने बोर्डिङ्ग हाउस के दो सौ विद्यार्थियों को देखता हूँ जो देश की समस्त समस्याओं को जानते हुए भी कान तक हिलाते नहीं मालूम होते तब लाला हरदयाल के विचारों का ध्यान आ जाता है जो वे हम लोगों के बारे में रखते हैं। देश के संबंध में बड़ी बड़ी सुधार की बातें करने, नेताओं के लेक्चर सुनने को दौड़ जाने, बराबर अखबारों और किताबों के पढ़ने, दब्बू लोगों को बराबर गालियाँ देने—इन सब से फिर लाभ ही क्या जब कि काम करने के समय हमें ऐसा ही दब्बू बना रहना है। हम लोगों से तो वे अनजान किसान और मजदूर ही अच्छे हैं जो इन सब बातों में समय नष्ट नहीं करते। लेकिन मैं भूल गया ये सब बातें तो शिक्षा, सभ्यता व बड़े लोगों के समाज के शृङ्गार के अंग हैं। इन सब चीजों में समय नष्ट न करनेवाला आदमी संसार में असभ्य किंतु इन बातों के अनुसार चलने वाला मूर्ख और नासमझ समझा जाता है।

ऐसी स्थिति में अपने भावी जीवन से भी क्या आशा की जा सकती है। जिस सांचे में वह ढला है वैसा ही तो वह होगा। मुझे तो हम शिक्षित विद्यार्थियों का भविष्य साफ़ साफ़

दिखाई पड़ने लगा है—अपने माता पिता के जीवनों का प्रतिबिम्ब—थोड़े दिनों तक पढ़ना, घर पर व आपस में ऊँची ऊँची बातें करना, किसी न किसी बँधे पेशे में घुस जाना, नीचे को सिर डालकर अपना घर चलाना और फिर अंत। हम लोगों का यह भविष्य ब्रह्मा के अक्षरों से शायद उसी दिन लिख दिया गया था जब हम लोगों का जन्म हुआ था। तो मुझे भी अपना जीवन ऐसे ही काटना है। बड़ी बातें करने, उच्च विचार रखने और बड़े बनने का यत्न करने में, किंतु बड़े न बनने में। संगीत, चित्रकारी, बागवानी व ज्योतिष आदि के सीखने की इच्छा रखने में, किन्तु न सीख सकने में। प्राचीन भारत की संस्कृति, दर्शन तथा गौरव के संबंध में बातें करने, उनके संबंध में थोड़ा बहुत पढ़ने व देश के भविष्य के संबंध में सुंदर सुंदर स्वप्न देखने में किन्तु कार्य रूप में कुछ भी न करने में।

इसके विरुद्ध प्रयास करना व्यर्थ में शक्ति का ह्रास करना और मन को दुखी रखना होगा। इन सब के सचमुच करने का यत्न भी न करना चाहिए और न इनके न करने का ही यत्न करना चाहिए। उच्च शिक्षा प्राप्त होने के कारण हम लोग ये सब स्वाँग जरा बड़े पैमाने पर करते हैं। हम लोगों की दुर्बल आत्मा, कलुषित मन और अशक्त शरीर और संसार के बीच संघर्ष का फैसला हो गया है। हम लोगों ने हथियार डाल दिए हैं और हार मान ली है। जैसा सनातन से होता आया है बूढ़े तजुर्बेकार संसार की विजय हुई है। अब मैं भी अपने को नदी के प्रवाह में छोड़े देता हूँ किंतु बाहर से बहुत हाथ पैर पीटना दिखाना है। देखूँ मैं अपना पार्ट इस नाटक में कैसा खेलता हूँ।

अब 'कच्ची बुद्धि' समाप्त हो गई है और 'समझदारी' आ

गई है। संसार के 'कोड' (code) को अब मैं समझ गया हूँ। इसमें सचाई, ईमानदारी, धर्म, परोपकार, देश सेवा, विद्वत्ता आदि शब्दों के क्या अर्थ होते हैं यह मालूम हो गया है। इनके बतलाने का खास ढंग है। बहुत परीक्षा लेने के बाद ये बतलाए जाते हैं और इस रहस्य को सदा गुप्त रक्खा जाता है। यह न समझिये कि ये स्पष्ट शब्दों में अथवा पुस्तकों में लिखित रूप में प्रकट किए जाते हैं। इनका तो वेद मंत्रों के समान दर्शन होता है, वैदिक ऋषियों के समान द्रष्टा होना पड़ता है। सभ्य समाज में आपस में भी 'कोड' के असली अर्थों का जिक्र नहीं किया जाता है। यहाँ तक कि पिता अपने पुत्र से, भाई भाई से और पति अपनी स्त्री से भी इन शब्दों के असली अर्थ को प्रकट नहीं करता है। युवावस्था के अंत और बड़ी अवस्था के आरंभ होने पर यह ज्ञान स्वयं होता है।

११.११.१९२१.

खंड ३

देश दशा

(१९२१-२२)

१. असहयोग आन्दोलन

अब तक मैं देश की राजनीति के सम्बन्ध में विशेष कभी नहीं लिखता था। कारण यह था कि यद्यपि मेरे हृदय में अक्सर थोड़े बहुत उथल-पुथल होते रहे हैं लेकिन ये इतने जोर के कभी नहीं हुए थे कि मुझे स्वयं इसमें भाग लेने का विचार करना पड़ा हो। अब बात बदल गई है। राजनीति अब प्रत्येक देशवासी का धर्म हो गया है। समझ-बूझ कर भी जो देश के लिए काम करने से हिचकता हो—विशेष व्यक्तिगत स्थिति की बात भिन्न है—तो वह बुजदिल और कमजोर हृदय का है। मैं समझता हूँ कि देश को मेरी भी छोटी सी बलि की आज आवश्यकता है।

सन् १९०७ के बंग-भंग के आन्दोलन के समय देश की समस्या की ओर मेरा ध्यान पहले-पहल गया था। उस समय मैं केवल १०, ११ वर्ष का था किन्तु देश के समाचार बहुत उत्सुकता से सुना करता था। विदेशी कपड़ों का पहनना मैंने तभी से छोड़ा था।

देश का नया वर्त्तमान आन्दोलन १९१९ में रावलेट ऐक्ट के पास होने से आरम्भ होता है। गाँधी जी ने सत्याग्रह आरम्भ करवाया था। मैंने भी ६ अप्रैल को व्रत रक्खा था। उसके बाद ही पंजाब में जुल्म हुए जिनमें जलियान वाला बाग की घटना (१३ अप्रैल) मुख्य है। मैंने इन दिनों प्रथम बार इतने चाव से अखबार पढ़े थे। पंजाब के जुल्मों की कांग्रेस-रिपोर्ट के प्रकाशित होने के बाद ही कलकत्ते की कांग्रेस से गाँधी जी ने नया असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया। इसको आज एक वर्ष से ऊपर हो गया। पंजाब के जुल्मों के सिवाय

खिलाफ़त का प्रश्न तथा स्वराज्य का प्रश्न भी इस आन्दोलन में शामिल कर दिया गया। कलकत्ते में गाँधी जी अकेले थे। बड़े नेताओं में केवल मोतीलाल जी ने साथ दिया था। इसका कारण जवाहर लाल थे। दिसम्बर १६२० की कांग्रेस से, जो नागपुर में हुई थी, भारत के सब नेता मिल गए और तब से इस वर्ष भर छोटे आन्दोलन जारी रहा है। लड़कों से स्कूल कालेज छोड़ने को कहा गया और वकीलों से वकालत। एक करोड़ रुपया जमा किया गया, एक करोड़ कांग्रेस के मेम्बर बनाए गए व २० लाख चर्खे चलाए गए। आज गाँधी जी के सिवाय सारे नेता—पं० मोतीलाल, लाला लाजपत राय, सी० आर० दास, अब्दुल कलाम आजाद, मौलाना मोहम्मद अली व शौक़त अली—जेल में हैं। मालूम नहीं कल क्या होगा।

१७ नवम्बर १६२१ की हड़ताल ने, विशेषतया कलकत्ते की हड़ताल ने, रीडिंग साहब की आँखें खोल दी हैं। उसी दिन से एक तरफ़ से नेताओं की गिरफ्तारियाँ प्रारम्भ हुई हैं। शांति भंग न हो और काम करने वालों का ताँता न टूटे इस पर देश की जय निर्भर है।

१४. १२. १६२१.

२. इलाहाबाद की हड़ताल

पहली बार मेरे हृदय पर असर जवाहर लाल की इंडिपेंडेंट आफ़िस वाली स्पीच से हुआ था। मोतीलाल जी सभापति थे। जवाहरलाल ने उनकी ओर इशारा करते हुए कहा था, "जब हमारे सभापति जेल में होंगे, भाइयों, क्या आप लोग कालेजों में पढ़ते होंगे ?" आज मोतीलाल जी जेल में हैं और हम लोग कालेजों में पढ़ रहे हैं।

दूसरी बार लाला लाजपत राय के पकड़े जाने पर सी० आर० दास की अपील पढ़ कर मेरी आँखों में आँसू आ गए— "O ! the Shame of it, the mother calls and they have not the heart to answer." ये शब्द दिमाग में रह-रह कर घूमते हैं। ७ दिसम्बर को मोतीलाल जी इत्यादि इलाहाबाद के सब नेता गिरफ़्तार हो गए। इसका मुझ पर इतना असर नहीं हुआ, लेकिन दूसरे दिन देसाई के अग्र लेख में मोतीलाल जी का कागज़ में लपेट कर सुपारी खाने व पान छोड़ देने का हाल पढ़ कर जी भर आया।

१२ दिसंबर को युवराज इलाहाबाद आए थे। शहर में पूरी हड़ताल रही। कालेज के विद्यार्थी बिलकुल नहीं गए। अपने बोर्डिङ्ग हाउज से केवल दो लोग गए थे। घनानन्द वगैरह ने विदेशी कपड़ों की होली जलाई थी। शाम को यह हाल सुनकर मैंने भी अपने वस्त्रों में एकमात्र विदेशी वस्तु फ़ेल्ट-कैप का परित्याग कर दिया। इतवार व सोमवार दो दिनों में ८१ स्वयंसेवक गिरफ़्तार हुए।

आज के इंडिपेंडेंट से मालूम हुआ कि कल शाम की

प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में प्रायः सब मेम्बर पकड़ लिए गए हैं। रघुपति सहाय, रघुबीर सहाय, शीतला सहाय आदि सब साथी पकड़ गए। कुल ५५ मेम्बर पकड़े गए हैं किन्तु वे प्रान्त के सब जिलों की जान थे। बड़े-बड़े नेता तो ७ तारीख को ही गिरफ्तार हो चुके थे। तो क्या अब इस प्रांत में कांग्रेस का काम बन्द हो जाएगा ?

× × ×

आज के इंडिपेंडेंट से मालूम हुआ प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के उपर्युक्त ५५ मेम्बरों में २५ को १८+१ महीने की साधारण कैद व बाकी ३० मेम्बरों को १८+१ महीने की सख्त सजा का हुक्म हुआ है। रघुपति सहाय व रघुबीर सहाय प्रथम श्रेणी में हैं और शीतला सहाय, रामनरेश त्रिपाठी व रामदास गौड़ दूसरी श्रेणी में हैं।

३. सुलह का प्रस्ताव

दबाने से विजय की आशा न देखकर बंगाल की सरकार ने सुलह का प्रस्ताव किया है। उसका कहना है कि यदि २४ दिसंबर को कलकत्ते में हड़ताल न की जावे तो वह वालंटियरों को छोड़ देगी। मैं समझता हूँ कि इस समय बहुत ही होशियारी से चलने की आवश्यकता है। सरकार की यह केवल चाल है जिससे सुलह न करने का इल्जाम उसके सिर पर न पड़े। मालवीय जी सब पार्टियों के लोगों की कांफ्रेंस कराने का यत्न कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में नीचे लिखी बातें कांग्रेस वालों को अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए :—

१. २४ तारीख की हड़ताल की आज्ञा कांग्रेस ने दी है और केवल वह ही उसे रद कर सकती है। किसी व्यक्ति, नगर या प्रान्त को यह अधिकार नहीं है। जिन कारणों से हड़ताल कराई गई है। उनके दूर होने पर ही कांग्रेस भी इस आज्ञा को रद कर सकती है, अथवा कम से कम कांग्रेस और सरकार के बीच सुलह की घोषणा हो जाने पर कांग्रेस को ऐसा करना चाहिए।

२. सुलह का प्रस्ताव नेताओं के सामने व्यक्तिगत रूप से नहीं रक्खा जा सकता। सरकार को यह प्रस्ताव कांग्रेस के सामने रखना चाहिए और वह ही राष्ट्र की ओर से उसका उत्तर दे सकती है।

३. मैं समझता हूँ कि कांग्रेस के पिछले प्रस्तावों के अनुसार पंजाब और खिलाफ़त के फ़ैसले के सम्बन्ध में घोषणा निकाल देने पर ही लोगों को यह विश्वास होगा कि सरकार सचमुच

सुलह करना चाहती है। इसके बाद कांग्रेस और सरकार के बीच में इस विषय पर बातचीत होनी चाहिए कि मुख्य प्रश्न अर्थात् स्वराज्य का क्या रूप हो।

४. कांग्रेस को इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि देशवासियों के इतने कष्ट उठाने के बाद कोई अपमानजनक सुलहनामा सरकार से धोके में आकर न कर ले। पिछले वर्ष में पकड़े गए प्रत्येक व्यक्ति के छूट जाने पर ही कांग्रेस को सुलह के सम्बन्ध में विचार करना चाहिए। सुलह की शर्तों को मंजूर या नामंजूर करने का अन्तिम अधिकार कांग्रेस को अपने हाथ में रखना चाहिए।

४. चतुराई का उत्तर

मेरे एक साथी रतूड़ी से प्रोफेसर मूडी ने पूछा कि तुम युवराज के स्वागत में गए थे या नहीं, उसने उत्तर दिया कि नहीं। मूडी साहब के यह पूछने पर कि क्यों नहीं गए थे उसने कहा कि रसोइया ने खाना बनाने में देर कर दी थी अतः मैं नहीं जा सका। रतूड़ी का कहना था कि इस उत्तर से उसने अपने अंग्रेज प्रोफेसर को नाराज नहीं किया और स्वागत में न जाकर साथियों को भी खुश रक्खा।

एक गुरुजन की राय में 'रतूड़ी का यह उत्तर बहुत ठीक था। यह कुछ झूठ नहीं था। अनार्यों से झूठ बोलने में कुछ हर्ज नहीं है। रतूड़ी की निस्बत वह लड़का गलती पर है जो ऐसा 'चतुराई का उत्तर' न दे सकने की निर्बलता के कारण युवराज के स्वागत में चला जाता है। संसार को ऐसे मूर्ख सच बोलने वालों की आवश्यकता नहीं है। संसार जैसा आजकल है, उसमें अक्सर झूठसच बोलना ही पड़ता है। आवश्यकता व लाभ को ध्यान में रखना चाहिए। झूठसच तो लाभ के ज़रिये मात्र हैं।

व्यवहारिक रूप से इन गुरुजन के ये विचार बिलकुल ठीक हैं, यद्यपि इस प्रकार की बातें यों साफ़-साफ़ कहने का रिवाज नहीं है। उनके अनुसार इस प्रकार का व्यवहार करने पर भी हरएक 'समझदार' आदमी बराबर इस तरह की बातों के खिलाफ़ आवाज़ उठाएगा। यही रिवाज है। परन्तु मेरी आत्मा तो ऐसा मानने या करने से अब भी रुकती है। मुझे क्रोध इस बात पर आता है कि संसार इन व्यवहारिक बातों की शिक्षा अपने बच्चों को बचपन से ही क्यों नहीं देता।

२०. १२. १९२१.

५. आंदोलन की दूसरी सीढ़ी

देश का आंदोलन अब दूसरी सीढ़ी पर पहुँच गया है। अब देश को तैयार करने का समय निकल गया है, अब तो जो कुछ हमले की तरह करना हो वह प्रारंभ होना चाहिए। इतने कम समय में इससे अधिक तैयारी नहीं हो सकती थी। यदि हमला करते समय देश शान्त रहे और जिन जिन को निश्चय होता जाय वे लोग थोड़े थोड़े करके सिपाही बनते जावें यही बहुत है।

अहमदाबाद की कांग्रेस अपनी निराली धूमधाम के साथ हो गई। सब कुछ वहाँ खादीमय था व सब बातों में भारतीय ढंग अपनाया गया था। कांग्रेस ने पिछले वर्ष की कार्यशैली का समर्थन किया और आगे युद्ध चलाने के लिए गाँधी जी को व उनके पकड़ जाने पर उनके द्वारा निर्वाचित नेता को कांग्रेस के संपूर्ण अधिकार दे दिए, किन्तु सरकार से सुलह करने का अधिकार अपने हाथ में रक्खा है। यह आशा थी कि १५ जनवरी से गांधी जी गुजरात में पूर्ण असहयोग संग्राम प्रारंभ कर देंगे।

इसी बीच मालवीय जी ने बंबई में स्वतन्त्र नेताओं की एक कांफ्रेंस बुलाई जिसके द्वारा वे सरकार और कांग्रेस के बीच समझौता कराने का यत्न करना चाहते थे। कांफ्रेंस ने समझौता होने से पूर्व राजनीतिक कैदियों को छोड़ देने की सरकार को व हड़ताल इत्यादि रोक देने की कांग्रेस को सलाह दी तथा इस संबंध में प्रयत्न करने के लिए २० सदस्यों की एक कमेटी नियुक्त की। इस कांफ्रेंस के कहने से गांधी जी ने अपना

संग्राम आरंभ करने की तिथि ३१ जनवरी तक हटा दी है। इस संबंध में कुँजरू साहब का व्यवहार आदर्श नरम दलवालों का सा था। शंकर नैयर से शायद कोई भी ऐसी आशा नहीं करता था।

इसी संबंध में दो प्रस्ताव ऐसेम्बली और कांउसिल आव स्टेट में पेश हुए। इनमें सरकार को यह सलाह दी गई थी कि वह पकड़ धकड़ करने की नीति को बदल दे और समझौता करने का यत्न करे। कल खबर आई है कि दोनों जगह ये प्रस्ताव रद हो गए (२३:१०; ५३:३३)। इसका यह मतलब हुआ कि मांटेगू साहब की दी हुई ये "स्वराज सभाएँ" देश के वर्त्तमान आंदोलन को दबाने में सरकार के साथ हैं और पंजाब, खिलाफ़त तथा स्वराज लेने के संबंध में कांग्रेस से सहानुभूति नहीं रखती हैं। यह निर्णय बहुत आश्चर्यजनक नहीं है क्योंकि इन कौंसिलों में एक भी सदस्य स्वतंत्रतावादी नहीं है—या तो कुछ नरमदल के व्यक्ति हैं, नहीं तो जमींदार व सरकार के पिट्ठू हैं। इसमें संदेह नहीं कि इस फैसले से अब सरकार को जुल्म करने के लिए और भी अधिक खुला हाथ मिल जावेगा।

अब मालवीय जी की कमेटी का कार्य अपने आप ही समाप्त हो गया। जिनके पास वह सुलह का पैगाम लेकर जाने वाली थी उन्होंने खुद ही पहले से ही इस संबंध में इनकार कर दिया। गांधी जी, कांग्रेस व देश के सिपाहियों का मार्ग साफ है। अपने बाहुबल—आत्मिक बल—से युद्ध जीतना होगा। संग्राम प्रारंभ करने में अब देर करने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता। सरकार अब बहुत जल्द गांधी जी को पकड़ेगी, अतः अच्छा तो यही होगा कि वे खुद कार्य आरंभ करके अपने को पकड़वा दें।

महाभारत युद्ध के समान यह युद्ध भी आपस में ही होता दिखाई पड़ता है। 'इंडिपेंडेंट' अखबार बंद हो जाने के कारण हम दर्शकों—पाठकों—का बड़ा नुकसान हो गया। कुछ समाचार ही नहीं मिलते। 'लीडर' अखबार तो जेल के भोजन की तरह मानसिक-स्वास्थ्य का नाशक है।

२०. १. १९२२

६. चौरा-चौरी की दुर्घटना

गोरखपुर की दुर्घटना के कारण, जहाँ लगभग २२ पुलिस के आदमी जनता ने मार डाले, आंदोलन की गति ही बदल गई। गांधी जी अपने आश्रम से विदा होकर बरदौली में आ डटे थे। बरदौली बिलकुल तैयार हो गया था। मालवीय कांफ्रेंस का उत्तर मिल जाने पर गांधी जी ने वायसराय के पास 'अंगद-बसीठी' भी भेज दी थी। उसका उत्तर प्रत्युत्तर भी हो गया था। शायद ११ फरवरी से संग्राम भी प्रारंभ हो जाता कि यकायक गोरखपुर की दुर्घटना का समाचार आया। ठीक समय पर ऐसा होना कुछ दैवी घटना सा मालूम होता है। दो बार और भी ऐसा हो चुका है। इसमें संदेह नहीं है कि देश पूर्णरूप से तैयार नहीं हो सका है। इतना अवश्य है कि यदि सरकार बहुत अधिक तंग न करे तो लोग शान्त रहना सीख गए हैं। बहुत अधिक तंग किए जाने पर जनता अवश्य पागल हो जाती है।

जो हो नतीजा यह हुआ कि कार्यकारिणी समिति ने बरदौली का संग्राम मुलतबी कर दिया, देश भर में युद्ध के कार्यों को बंद करवा दिया और फिर पुरानी बातों, जैसे चरखा चलाने आदि को हाथ में लेने की सलाह दी है। इसमें मालवीय जी का भी कुछ हाथ था। गांधी जी ने पांच दिन का व्रत रक्खा है। मालवीय जी अब एक बार फिर सुलह कराने का यत्न करेंगे इसमें संदेह नहीं है।

इस निश्चय से लोग बहुत निराश हुए हैं। जो लोग जेल में हैं उन्हें तो धक्का लगा ही होगा। उनके घर के लोग गालियाँ

देते होंगे। सरकार ने कुछ चैन की सांस ली होगी। नरम दल के लोग बहुत प्रसन्न हुए हैं। मेरी समझ में यह निश्चय महीने डेढ़ महीने में ही पलट जायगा। जैसी बड़ी बात हो गई उसका वैसा ही भारी प्रायश्चित किया गया है जिससे कि सरकार व नरमदल के लोग बहुत गाल न बजा सकें अथवा आंदोलन को दबाने के लिए नाजायज़ जोर न डाल सकें। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की अगली बैठक बहुत कुछ इन निश्चयों को पलट देगी।

वास्तविकता यह है कि देश सचमुच अभी तैयार नहीं है। यदि दो वर्ष इसी प्रकार तैयारी का काम और हो जाता तो बहुत अच्छा होता। सरकार यदि इस समय नेताओं को छोड़ दे तो युद्ध छेड़ने के स्थान पर दो वर्ष उन्हें जुट कर काम करना चाहिए।

१५. २. १९२२

७. आंदोलन की प्रगति

इस बीच बड़ी बड़ी बातें हो गईं। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की दिल्ली की बैठक ने कार्यकारिणी के निश्चय को मान लिया, किन्तु प्रांतों को व्यक्तिगत रूप से सत्याग्रह करने का अधिकार दे दिया। शराब की दूकानों की तरह विदेशी कपड़ों की दूकानों पर भी पहरा देने की आज्ञा दी है। किंतु गांधी जी ने अपनी निज की राय दी कि अधिकार मिल जाने पर भी प्रान्तों को इनका उपयोग उतावली से नहीं करना चाहिए, बल्कि इस वर्ष तो बरदोली के निश्चय को कार्यरूप में परिणत करना चाहिए।

इसके बाद १० मार्च १९२२ को रात्रि के दस बजे गाँधी जी अपने आश्रम पर गिरफ्तार कर लिए गए और दो तीन दिन हुए खबर आई है कि उन्हें ६ साल की सादी कैद का हुक्म हुआ है। वे साबरमती के जेल में रक्खे गए हैं। कार्यकारिणी समिति ने बरदोली तथा दिल्ली के निश्चयों की ओर प्रान्तों का ध्यान आकर्षित किया है। गांधी जी की गिरफ्तारी पर देश में कहीं भी कोई दुर्घटना नहीं हुई। गांधी जी ने चार बातों पर विशेष बल दिया है:—१. अहिंसा, २. हिंदू-मुस्लिम ऐक्य, ३. अछूतपन का नाश, और ४. खद्दर का प्रचार। उनकी राय में इनमें अंतिम बात में पहली तीन बातें भी आ जाती हैं। एक शब्द में उनका संदेश 'खद्दर' है। लाला जी को दो वर्ष की सजा पहले ही हो चुकी है। जवाहर लाल व हरकरण नाथ मिश्र अवश्य छूट आए हैं। आजकल देश में निःसत्व शांति मालूम होती है।

\+ \+ \+

इस बीच मांटेग्यू साहब ने भी इस्तीफा दे दिया है। उनकी जगह वायकाउंट पील नियुक्त हुए हैं। मिस्र से अंग्रेजों का समझौता हो गया है। अंग्रेजों ने मिस्र को किसी तरह धोका दे लिया। वहाँ की प्रजा अब भी असंतुष्ट है। टर्की के मामले को निपटाने के लिए एक कांफ्रेंस हो रही है।

इस वर्ष बजट में ३४ करोड़ रुपये का घाटा हुआ है। अतः यह कमी पूरी करने के लिए रेल व डाक का महसूल बढ़ने वाला है। नमक, मशीनें, कपड़ा, विलायती सूत और दियासलाई पर भी कर बढ़ाया जाने वाला है। युवराज जैसे आये थे वैसे ही अपना सा मुंह लिए चले गए।

२२.३.१९२२

खंड ४

माया जाल

(१६२२—२४)

१. विवाह करने के आठ परिणाम

विवाह करने से मेरी समझ में चार बातें घर में बढ़ती हैं :—१—झगड़ा, २—बीमारी, ३—खर्च, और ४—बंधन। पूर्ति भी शायद कुछ बातों की होती है, जैसे १—विषय वासना की तृप्ति, २—परिवार के लोगों विशेषतया माता पिता को संतोष, ३—न भागने वाला नौकर जिससे रोटी का खास आराम, और ४—वात्सल्य प्रेम के विकास की सामग्री का आगमन। दोनों ओर की बातों को सोच समझ कर जिसमें जिसे अधिक लाभ दिखाई पड़े उसे वैसा करना चाहिए। साधारणतया आठों बातें आती हैं।

२. जीवन साथी के गुण

मालूम होता है विवाह मुझे करना ही होगा। मुझमें इतनी शक्ति नहीं कि मैं उसे रोक सकूँ।

इसमें संदेह नहीं कि बचपन के विचार के अनुसार अब मैं विवाह को अस्वाभाविक नहीं मानता हूँ, बल्कि स्वाभाविक और उचित मानने लगा हूँ। किन्तु लोगों की वर्त्तमान शारीरिक व आर्थिक अवस्था तथा देश दशा को देखते हुए मैं यह अवश्य समझता हूँ कि अपने देश में ६६ फी सदी लोगों को विवाह नहीं करना चाहिये। जब मनुष्य सारा जीवन ही अस्वाभाविक रूप में काटता है तब एक विवाह न करने की बात को भय की दृष्टि से क्यों देखता है। यों मैं अपनी गिनती भी इन्हीं ६६ आदमियों में करता हूँ किन्तु इस सिद्धान्त को कार्य रूप में परिणत करने की मुझमें शक्ति नहीं है। अपने से तथा परिवार के लोगों से लड़ने से क्या लाभ जब अपना दिल ही पोढ़ा नहीं है। अपने मन ने जब बहने की ठान ली है तब व्यर्थ को बीच बीच में हाथ पैर फटफटाने से क्या लाभ।

जब विवाह होना ही है तो फिर थोड़ा बहुत अपनी रुचि के अनुसार कार्य हो सके तो क्या हर्ज है। यों मैं जानता हूँ कि ऐसा करने से भी कुछ विशेष लाभ नहीं होगा, इसलिए मैंने अंतिम निर्णय माता पिता पर छोड़ दिया है। किन्तु जब मरना ही है तो अपने मन का विष क्यों न खाया जाए। जीवन साथी में निम्नलिखित बातों का होना मेरी समझ में हितकर हो सकता है :—

१. सहज बुद्धि (Common Sense) को मैं सबसे पहला स्थान देता हूँ। मिसाल के लिए जैसी बुद्धि मेरी दादी की थी, या लाऊ में है। अकबर बिना अक्षर ज्ञान प्राप्त किये इसी सहज बुद्धि के सहारे बड़ा हुआ। किन्तु अधिक मात्रा में सहज बुद्धि लोगों में प्रायः कम पाई जाती है।

२. इसलिये इसकी पूर्ति के लिए कमा सकने वाली शिक्षा प्राप्त होना सहायक सिद्ध हो सकता है। शिक्षा से कुछ बुद्धि भी आ जाती है। अपने पैरों पर खड़े होने की शक्ति रखने वाले साथी के होने से भार कुछ हलका मालूम होता होगा। बिलकुल बेमेल-जोड़ न होने से शायद कुछ चित्त मिलने की संभावना भी हो सकती है! शिक्षित व्यक्तियों की इच्छाएँ कुछ एक सी हो जाती हैं।

३. मुख की सुन्दरता की निस्बत शरीर व मुख के सुडौल-पन को मैं अधिक महत्व देता हूँ। रंग पर अभी तो मैं कुछ अधिक ध्यान नहीं देता हूँ। हाँ, गंदा और घृणा उत्पन्न करने वाला साथी तो नहीं ही होना चाहिए। स्त्री के बहुत सुंदर होने से कठिनाइयाँ हो सकती हैं। सोने की चेन रखने से उसकी रक्षा के निरन्तर ध्यान से मन में अशांति रह सकती है। पहरेदारी और संदेहावस्था भारी बोझ हो सकता है। मैं तो अच्छी बनी हुई किसी भी धातु की चेन से संतुष्ट हूँ। काम तो चेन से है, भद्दी न हो बस इतना काफी है।

४. खानदान तथा रुपये आदि के प्रश्न मेरे लिए कोई अर्थ नहीं रखते हैं। इतना अवश्य है कि कोई नया भारी सुधार करके जीवन भर समाज से लड़ते रहना मैं नहीं चाहता।

इस प्रकार के विचार रहते हुए भी मैंने विवाह का निर्णय पिताजी की इच्छा पर छोड़ दिया है। बुजुर्ग लोग हम लड़कों से अधिक तजुर्बेकार होते हैं।

मेरे एक अनन्य मित्र का अनुभव है कि गृहस्थी के सुख के लिए स्त्री में दो गुण और होने चाहिए। प्रथम, स्वार्थ की मात्रा कम हो—कुछ उदार तथा विशाल हृदयवाली हो—इसके फलस्वरूप घर के लोगों से झगड़े की संभावना कम होगी। दूसरे परिश्रमशील हो—आराम व शान चाहनेवाली न हो। हम लोगों के घर के सुख के लिए ये दोनों बातें भी नितान्त आवश्यक मालूम होती हैं।

\+ + +

मेरा अनुभव हो रहा है कि वर-वधू की ठीक जोड़ी मिलने में ज्योतिष के विश्वासों के अतिरिक्त विवाह के अवसर पर होने वाले खर्चीले रिवाज और अन्य व्यर्थ के आडम्बर और भी अधिक बाधा डालते हैं। जहाँ रिश्तेदारों का लेन देन बराबर करना हो, मित्रों को शानदार दावतें खिलानी हों, नौकर-चाकरों की वाहवाही लेनी हो, भविष्य के लाभ का स्थायी प्रबंध करना हो, समाज में परिवार को ऊँचा स्थान दिलाने का ध्यान बना हो, तथा कुछ लोगों को नीचा दिखाने की पुरानी बहसें पूरी करनी हों, तो ऐसी स्थिति में बिचारे वर-वधू की ठीक जोड़ी होने की चर्चा ही व्यर्थ है। जब तक ये व्यर्थ के आडंबर दूर नहीं होंगे, तब तक देश में सुखी घर देखने को नहीं मिल सकते।

११.१.१६२२

३. मेरा विवाह

आखिर मेरा विवाह हो ही गया। घर के लोग इसकी मेरे जन्म के पूर्व ही से प्रतीक्षा कर रहे होंगे। जन्म, विद्यारंभ, विवाह, पेंशन और मृत्यु ये एक मनुष्य के जीवन की मुख्य सीढ़ियाँ हैं और इनमें विवाह चढ़ाई की अंतिम अतएव सबसे ऊँची सीढ़ी होती है।

विवाह में प्रायः सभी रिश्तेदार आए थे। पिता जी के तथा मेरे मित्रगण भी काफी थे। लखनऊ के सब मित्र वहाँ मिल गए। इस रौनक का श्रेय दिसंबर के महीने में इलाहाबाद से लखनऊ तक बारात जाने पर बहुत कुछ था। विवाह की सब रस्में सानंद समाप्त हुईं। जनमासे में खाने तथा ठहरने आदि का सुप्रबंध था। लोगों को कोई विशेष कष्ट नहीं हुआ। दावतें ठीक समय पर हुईं।

मेरे ससुर साहब आदमी भले मालूम होते हैं। उनकी दूसरी स्त्री—मेरी सास—भी बहुत हँसमुख हैं। क्रम से १२ और १० बरस की उमरों के दो साले हैं। इनके सिवाय परिवार में मेरे ससुर साहब के दो छोटे भाई और माता हैं। उनकी लड़की की गिनती तो अब उनके घर में हो नहीं सकती।

इस परिवर्त्तन का प्रथम अनुभव मुझे तब हुआ जब पहली ही शाम को मेरे बड़े साले ने मुँह भर कर मुझे 'जीजा' कहके पुकारा। यह नाम था भी अर्थपूर्ण, पाणिग्रहण तथा सप्तपदी के समय मुझे कुछ विशेष अनुभव नहीं हुआ। कुछ अनुभवी मित्र बड़ी बड़ी बातें बतलाया करते थे।

लोगों का कहना था कि मैं अपने विवाह के बारे में बहुत

संजीदा था तथा बहुत काम करता था। प्रथम बात ग़लत है, दूसरी बात ठीक है। मेरी विशेष स्थिति के कारण—क्योंकि घर में पुरुषों में मेरे पिता जी ही अकेले थे—मुझे प्रबंध अवश्य देखना पड़ता था। अपनी आँखों के सामने कुप्रबंध अथवा मित्रों और रिश्तेदारों को तकलीफ़ में नहीं देख सकता था। मुस्कराती हुई सूरत रखना भी आवश्यक था, नहीं तो मनहूस शक्ल बनानी पड़ती। बीच में रुके रहना मुश्किल था। दिमाग़ को प्रबंध संबंधी बातें सोचने से एक मिनट की भी फुर्सत नहीं मिलती थी, अतः हर्ष व विषाद के लिए अवसर ही नहीं था।

अपनी स्त्री के संबंध में विवाह के अवसर पर मेरा कुछ भी ख्याल नहीं बना। ठीक से देखा भी नहीं। इलाहाबाद आते समय रेल में अपने चाचा से बात करते समय उसके कुछ शब्द कान में पड़े थे। वे शब्द याद नहीं, किंतु उन्होंने उसके संबंध में सोचने का प्रथम अवसर दिया था। आने जाने वाले दिनों को छोड़कर मेरी स्त्री तीन दिन घर रही। जाने से पूर्व अंतिम दिन उससे कुछ समय के लिए मिलना हुआ। इस थोड़ी देर के मिलने से मैं अभी उसके संबंध में कुछ विशेष राय नहीं बना सकता। यों वह साधारणतया दर्शनीय, पढ़ी लिखी तथा स्नेहमय स्वभाव की मालूम होती है। आरामतलब और तेज़ स्वभाव की न हो इसके सिवाय मैं और कुछ नहीं चाहता। मैं रूप, विद्या अथवा धन को उतना महत्व नहीं देता हूँ जितना परिश्रमशील होना, समझदारी और स्नेहमय स्वभाव को देता हूँ। देखिए धीरे धीरे पता चलेगा कि कैसी निभती है।

१५.१२.१९२२

४. नवदम्पति का प्रेम

मैं कभी कभी सोचता हूँ कि नवदम्पति का प्रेम भी कैसा बनावटी है। दो अनजान व्यक्ति मिलते हैं और तत्काल एक दूसरे से प्रेम करने लगते हैं। सच पूछिए तो यह प्रेम व्यक्तिगत नहीं होता है बल्कि स्त्री पुरुष के सम्बन्ध का होता है। इसका उत्तर मेरी स्त्री ने पिछली बातचीत के अवसर पर दिया था जिससे हिंदू विचारों की सुंदरता का मुझे पहले पहल अनुभव हुआ।

बातचीत के सिलसिले में मैंने कहा कि यह संयोग है कि मैं आज इस जगह हूँ नहीं तो न मालूम कौन होता, तुम्हारी जगह भी कोई और ले सकता था। उत्तर मिला कि किसी अन्य का इस स्थान पर होना असंभव था, आप ही इस जगह के लिए बनाए गए थे और मैं आपके लिए बनाई गई थी; इसके सिवाय कुछ और हो ही नहीं सकता था।

यद्यपि यह विचार मिथ्या है किंतु इससे संतोष अवश्य होता है। जो लोग सचमुच इस सिद्धान्त में विश्वास करते होंगे उनका तो कहना ही क्या है।

२०.१२.१६२२

५. विवाह के संबंध में कुछ विचार

विवाह के सम्बन्ध में मेरे बहुत से विचार बदल रहे हैं। लड़कपन में मैं विवाह न करना आदर्श मानता था, अब मेरा ऐसा खयाल नहीं रह गया है। विवाह करने को अब मैं स्वाभाविक समझता हूँ। यदि आदमी संयम से रहे तो विवाह से हानि नहीं हो सकती। वृक्षों में प्रति वर्ष सैकड़ों बीज आकर झड़ जाते हैं, इससे वृक्ष की शक्ति का ह्रास नहीं होता है। प्रकृति के नियम के अनुसार यह ठीक ही है कि बची हुई शक्ति आगे के वृक्षों को बनाने के लिए बीजरूप में निकल जावे। हाँ, यदि किसी बनावटी तरीक़े से वर्ष में दो बार या दस बार बीज लगाने का तरीका निकाला जाये तो वृक्ष को अवश्य हानि होगी।

अभी कुछ ही दिन पहले मेरा खयाल था कि बिना जीवन में स्थिर हुए विवाह नहीं करना चाहिए। यह खयाल भी बदल गया है। असल में विवाह जीवन की बसंत ऋतु में होना चाहिए, अन्य बातों का खयाल करना एक प्रकार से अस्वाभाविक है। मैं समझता हूँ कि अपने देश के लिए २५ वर्ष की आयु विवाह के लिए अधिक है। वैसे तो प्रत्येक व्यक्ति के स्वास्थ्य के अनुसार कुछ अंतर हो सकता है, किन्तु साधारणतया २० से २२ वर्ष के बीच में अपने देश में लड़कों का विवाह हो जाना चाहिए। २२ वर्ष की आयु के बाद अविवाहित रहना लड़कों के स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकर हो सकता है। यह भी सोचना चाहिए कि २५ वर्ष का नियम तब बनाया गया था जब लोगों की आयु लगभग १०० वर्ष की होती थी। आजकल

तो लोगों की आयु ६० वर्ष से अधिक प्रायः नहीं होती है। ऊपर की बात प्रधानतया स्वास्थ्य की दृष्टि से कही गई है। पढ़ाई इत्यादि के सम्बन्ध में मैं नहीं कह सकता कि लड़कों पर क्या असर पड़ेगा। अक्सर विवाह हो जाने पर लड़के पढ़ाई छोड़ बैठते हैं।

आजकल की सामाजिक स्थिति को देखते हुए जीविका का प्रश्न सुलझ जाने तक विवाह के लिए रुकना व्यर्थ है। अपने यहाँ नौकर हो जाने पर अलग घर बनाने का रिवाज तो है नहीं, फिर उसका इंतजार क्या। यदि माता पिता जीवित हैं और घर की आर्थिक स्थिति ठीक है तो नौकरी के प्रश्न के कारण विवाह नहीं रोकना चाहिए। हाँ, जिन लोगों के घर की हालत ठीक नहीं हो वे लोग जीवन में स्थिर होने तक विवाह न करें तो ठीक है। कमा सकने योग्य हो जाने पर विवाह करने से एक लाभ अवश्य हो सकता है कि ऐसी अवस्था में आदमी अपने मन के अनुसार विवाह करने पर अधिक जोर दे सकता है। माता पिता के सहारे होने और कम उम्र के होने से यह स्वाभाविक है कि माता पिता पर निर्णय छोड़ना पड़ेगा। उसके सिवाय नौकर हो जाने पर अपनी स्थिति के अनुरूप जीवन साथी ढूँढा जा सकता है।

एक बात और है। लड़के और लड़कियों की आयु में बहुत अन्तर नहीं होना चाहिए। १६ और २५ का फर्क बहुत ज्यादा है। तीन-चार वर्ष का अंतर बहुत काफी है, जैसे १६ वर्ष की लड़की और २० वर्ष का लड़का हो तो बहुत ठीक जोड़ी रहे। मैं तो समझता हूँ कि अन्तर और भी कम हो तो अधिक उत्तम है। कदाचित् देश में विधवाओं के अधिक होने का एक कारण लड़के लड़कियों की आयु का अधिक अंतर भी हो सकता है। प्रत्येक हिन्दू परिवार में बड़ी उमर की

एक दो विधवा स्त्री मिलेगी। स्त्री और पुरुष की आयु भगवान् के यहाँ से बराबर ही होती है। यदि पुरुष स्त्री से दस बरस बड़ा है तो यदि वह दस बरस पहले चल बसे तो क्या आश्चर्य है।

विवाह आदि के सम्बन्ध में शास्त्रों में ऐसा लिखा है अथवा रिवाज ऐसा है इस कारण ऐसा होना चाहिए इस प्रकार के तर्क लोगों को अब छोड़ देने चाहिए। अपने सुख दुख के विषय में लोगों को अपनी ही बुद्धि से सोचने का अभ्यास डालना चाहिए। वैद्यक आदि के समान धर्म तथा सामाजिक नियमों आदि के सम्बन्ध में भी नये प्रयोग करके सच्चाई जानने की आवश्यकता है। पाश्चात्य इस बात में हमसे बहुत आगे हैं, अतः हमसे अधिक सुखी भी हैं।

१२. २. १९२३.

९. वरवधू का चुनाव

मेरे एक मित्र के शब्दों में आजकल के विवाह बड़े स्टेशनों पर कुलियों की पारी की तरह होते हैं। सब कुली संतोष के साथ प्लैटफ़ार्म पर एक लाइन में बैठ जाते हैं। गाड़ी आई। दिखाई पड़ रहा है कि फलाने डिब्बे में असबाब बहुत मिलेगा, लेकिन नियम के विरुद्ध होने के कारण कोई टस से मस नहीं कर सकता। फ़स्ट सेकंड क्लास के डिब्बे सामने से निकलते चले जा रहे हैं, किन्तु अगर स्टेशन पर कुलीगीरी करनी है तो उन्हें सतृष्ण नेत्रों से देखने के सिवाय और कुछ नहीं किया जा सकता। यहाँ के भाग्य के निपटारे के नियम को मानना पड़ेगा।

आखिर गाड़ी धीमी पड़ी और अन्त में रुक गई। बस अब जो डिब्बा सामने पड़ा हो उसमें अपने भाग्य को टटोलिए। आपकी क़िस्मत है कि आपके सामने रिज़र्व क्लास पड़ जावे, अथवा तीसरे दर्जे के ग़रीब मुसाफ़िरों का डिब्बा। यह भी हो सकता है कि आपके सामने से गाड़ी बिलकुल ही निकल गई हो, कोई डिब्बा सामने न हो। अन्तिम हालत में लंबी साँस लेकर उठ कर चले आइए और दूसरी गाड़ी का इंतज़ार कीजिए। किसी डिब्बे में एक ही अदद असबाब का हो सकता है और उस डिब्बे के सामने कुली कई पड़ सकते हैं। ऐसी अवस्था में जो कुली अधिक फ़ुर्तीला होता है उसके हिस्से में वह अदद जा सकता है।

अगर कोई कुली बेईमानी करता है तो उसे–अगर वह कमज़ोर हुआ तो–जमादार के बेंत खाने पड़ सकते हैं।

किंतु अगर मज़बूत और गाँठ का पूरा हुआ तो जमादार साहब का मुँह भरने से काम निकल सकता है। खुले तौर पर इस नियम का तोड़ने वाला कुलियों की बिरादरी से निकाल दिया जावेगा और उसे इस पेशे से ही हाथ धोने पड़ सकते हैं। शहर में कुलीगीरी करने से इतनी मजदूरी भी मिलने की आशा मामूली कुली को नहीं रहती है, इसलिए वह बिचारा स्टेशन के काम में ही पड़ा रहना पसंद करता है। दिन रात में पेट पालने भर की मजदूरी तो मामूली तौर पर मिल ही जाती है। कोई ही ऐसा बद-क़िस्मत कुली होगा जिसे इतना भी नसीब न होता हो।

विवाह के सम्बन्ध में समाज की वर्तमान अवस्था का कैसा सच्चा चित्र है।

३. ११. २३.

७. मेरी नियुक्ति

अगली जुलाई से इलाहाबाद यूनीवर्सिटी में हिंदी लेक्चरर के स्थान पर मेरी नियुक्ति हो गई है। हिंदी की ओर मेरी अभिरुचि बहुत पहले से थी। स्कूल लीविंग की परीक्षा में मेरा अनायास ही डिस्टिंक्शन आया था। बी० ए० प्रथम वर्ष में मेरी इच्छा साहित्य सम्मेलन की हिंदी परीक्षाएँ देने की थी किन्तु पिता जी की इच्छा न देख कर मैं रुक गया था। एम० ए० मैंने संस्कृत में किया, क्योंकि उस समय विश्वविद्यालय में हिंदी विषय इंटर की परीक्षा तक में नहीं था।

एम० ए० के बाद खोज के लिए मैंने "ब्रजभाषा का विकास" शीर्षक विषय अपने लिए छाँटा था। उसका एक कारण अपने साथी बाबूराम का "अवधी भाषा" पर काम करना था। यों मेरी अपनी इच्छा "भारत के प्राचीन भूगोल" पर काम करने की थी। खोज के दो वर्षों में मैंने अंग्रेजी में एक भी पेपर नहीं लिखा। हिंदी में अवश्य "मध्यदेश का विकास" तथा "जनपद और हिंदी की बोलियाँ" शीर्षक दो निबन्ध नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित करवाए थे। इस समय पत्रिका के सम्पादक पं० गौरी शंकर हीराचंद ओझा थे। उन्होंने इन निबन्धों की बहुत प्रशंसा की थी। हिंदी की पत्रिकाओं, विशेषतया "श्रीशारदा" में, द्वारका प्रसाद मिश्र के आग्रह के कारण कुछ लेख दिए थे।

मेरी इस नियुक्ति का एकमात्र श्रेय गुरुवर डॉ० गंगानाथ झा जी को है। उन्होंने पहले से ही विश्वास दिलाया था कि अगले वर्ष हिंदी में स्थान होने पर तुम्हें लेने का यत्न करूँगा।

नियुक्ति के बाद गुरुवर झा साहब से मिला था। वे संतुष्ट मालूम होते थे। उन्होंने सलाह दी कि दो तीन वर्ष मुझे बहुत परिश्रम से काम करना चाहिए। इन छुट्टियों में ही मुझे अगले वर्ष की पढ़ाई के लिये अपने को तैयार कर लेना चाहिये। मेरी नियुक्ति को भिन्न भिन्न लोगों ने भिन्न भिन्न प्रकार से लिया। डाक्टर आचार्य तो अपनी कोशिश करने का हाल सुनाते नहीं थकते थे। बा० श्यामसुंदर दास ने कुछ फीके मनसे बधाई का पत्र भेजा था। मेरे एक मित्र ने लिखा था कि तुम इस जगह के लिए और यह जगह तुम्हारे लिए अत्यंत उपयुक्त है। जितने मुँह उतनी बातें। सच्ची खुशी और संतोष तो मेरे पिता, माता और स्त्री को होना चाहिए।

इस नियुक्ति से मैं स्वयं इसलिए प्रसन्न हूँ कि अब मैं अपने पिता जी के शिथिल कंधों का बोझ अपने ऊपर ले सकूँगा, अपनी माता को सुख पहुँचा सकूँगा तथा अपनी स्त्री के प्रति ठीक से कर्त्तव्यपालन कर सकूँगा। मैं स्वयं भी अपने मन का निर्दोष कार्य करते हुए शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकूँगा। इस नये स्थान पर अपने कर्त्तव्य का यथाशक्ति पालन करते रहने पर मेरा सदा ध्यान रहेगा।

२१-५-१९२४

८. भावी योजनाएँ

यदि मेरी स्त्री का स्वास्थ्य ठीक हो जावे और कोई अन्य दैवी आपत्ति न आवे तो हम लोगों के परिवार का भविष्य सुखपूर्ण मालूम होता है।

कुछ वर्षों तक मेरा विचार खूब लगकर काम करने का है। भविष्य में भी मैं बहुत कुछ विद्यार्थी जीवन क़ायम रखना चाहता हूँ। आगे का साहित्यिक कार्यक्रम मैंने कुछ निम्न प्रकार से सोचा है :—

पहली सीढ़ी

१. हिंदी भाषा का इतिहास
२. सूरसागर और भागवत—तुलनात्मक अध्ययन
३. हिंदी राष्ट्र
४. ब्रजभाषा कोष
५. सुदामा चरित्र : संपादन
६. खोज संबंधी निबंध तथा लेख :—
    क. बरेली की बोली का अध्ययन
    ख. सूरसागर की हस्तलिखित पोथियों का वर्णन
    ग. यूनीवर्सिटी मैगज़ीन में लेख
    घ. हिंदी पत्रिकाओं में कुछ लेख
७. विशेष अध्ययन :—
    क. प्राचीन तथा मध्यकालीन हिंदी साहित्य
    ख. फ्रेंच, बंगाली तथा गुजराती का अभ्यास बढ़ाना

दूसरी सीढ़ी

१. हिंदी साहित्य का इतिहास
२. साहित्यालोचन संबंधी एक पुस्तक
३. वेद तथा वैदिक साहित्य पर एक ग्रन्थ
४. ब्रजभाषा व्याकरण
५. सूरसागर : संपादन
६. खोज-संबंधी निबंध तथा विशेष अध्ययन :—
 क. भाषा विज्ञान से संबंधित किसी विषय पर एक निबंध
 ख. आल्हखंड के संपादन की सामग्री
 ग. यूनीवर्सिटी स्टडी में लेख
 घ. हिंदी भाषा का अध्ययन, विशेषतया पुरानी हिंदी, अपभ्रंश तथा प्राकृतों का तुलनात्मक
 ङ. जर्मन, मराठी तथा तामिल का अभ्यास
 च. ग्रामगीतों तथा ग्राम साहित्य का संग्रह

तीसरी सीढ़ी

ब्रजभाषा के विकास पर थीसिस ।

६. सुख स्वप्न

मेरा विचार है कि उपर्युक्त स्वाध्याय संबंधी कार्यक्रम पूरा करने के बाद लगभग ४५ वर्ष की आयु तक स्थायी रूप से कार्य करता रहूँगा। ४५ वर्ष की आयु के बाद दो तीन वर्षों में धीरे धीरे इस जीविका के कार्य से अपने को अलग कर लूँगा। आजकल २० वर्ष का समय मेरी समझ में गृहस्थ आश्रम के लिए पर्याप्त है। मैं दो तीन वर्ष देर में गृहस्थ जीवन अवश्य प्रारंभ कर रहा हूँ।

इन बीस वर्षों में कुछ रुपया बचाना आवश्यक है। प्रायः जब मनुष्य का शरीर शिथिल होने लगता है तब रुपया जमा करने की आवश्यकता समझ में आती है। किन्तु बुढ़ापे की आवश्यकता को जवानी में ही सोचना उचित है। इलाहाबाद में अपना मकान हो जाना चाहिए। गर्मियों की छुट्टी में इधर उधर भटकने के बजाय अपने गाँव में रहना अच्छा रहेगा। पहाड़ जाने में जो रुपया खर्च होगा यदि वह गाँव पर खर्च किया जावे तो वहाँ मकान, कुँआ, बाग आदि सब ठीक हो सकते हैं। विलायत में भी तो लोग अपना एक 'कंट्री हाउस' रखते हैं। गाँव में यदि एक नौकर स्थायी रूप से रख दिया जावे तो वहाँ की सब चीजें ठीक रह सकती हैं। कुछ दिन बाद पिताजी भी गाँव के कार्यों में स्वतंत्रतापूर्वक समय दे सकेंगे।

अपने चारों ओर लोगों को दुखी देखकर मेरे हृदय को बहुत कष्ट पहुँचता है। मेरी आन्तरिक इच्छा है कि मेरे परिश्रम से जितने अधिक लोग सुखी हो सकें उतना अच्छा है। मुझे स्वयं अपना शरीर रेशमी कोट अथवा सर्ज के सूट

से ढकने से उतना सुख नहीं हो सकता जितना उसी रुपये से दस आदमियों का कष्ट गाढ़े के अंगरखे या रुई की बंडी द्वारा दूर करने से हो सकता है। अपने देशवासियों के साथ मैं भी गाढ़े या रुई का कोट पहिन सकता हूँ। दस पाँच वर्ष बाद मेरा आदर मेरे क़ीमती पहनावे से नहीं होगा। प्रारंभ में कुछ दिनों बाहर के दिखावे से कुछ सहायता अवश्य मिलती है।

जब अपना मकान हो जायेगा तो ग्रामीण जीवन बिताने का यत्न करूँगा। एक दो कमरे क़ायदे से सजे होने चाहिए, लेकिन शेष असली रहने के हिस्से सादा, साफ़ और हवादार होने चाहिए। आरामतलबी की आदत मुझे और मेरी स्त्री दोनों को कभी नहीं डालनी चाहिए। मकान में एक बगीचा आवश्यक है। इसमें पानी देने और खुदाई आदि के द्वारा कसरत अपने आप होती रहती है। कपड़े का व्यवहार अधिक से अधिक खद्दर का होना चाहिए। मेरी स्त्री को दही मथने और चर्खा चलाने का अभ्यास नियम से करना चाहिए। इन कामों में घी और सूत का लाभ अलग है। जमुना पर एक नाव शीघ्र ही रक्खूँगा। कुछ वर्ष बाद मोटरकार लेने का विचार है। यह कार मैं दिखावे के लिए नहीं रखना चाहता हूँ, बल्कि देश भ्रमण करने के उद्देश्य से लेना चाहता हूँ।

मेरी इच्छा है कि मेरा घर सबके लिए खुला रहे। यदि मेरे कोई मित्र, रिश्तेदार या परिचित कष्ट में हों तो वे हम लोगों के घर में सुख और शांति पा सकें। यदि मुझमें और मेरी स्त्री में आपस में पूर्ण प्रेम सहानुभूति और विश्वास हो तो यह बात कुछ कठिन नहीं है। दूसरों को सुखी करने में जितना आनंद प्राप्त होता है उतना अपने शरीर को सुख देने में नहीं होता।

मैं अच्छी तरह समझता हूँ कि ये सब सुख स्वप्न हैं। मनुष्य जीवन फूलों की शय्या नहीं है। इन स्वप्नों में मैंने कठिनाइयों और आपत्तियों का तो ध्यान ही नहीं रक्खा है। इसका एक विशेष कारण है। जब जानबूझ कर स्वप्न ही देखा जाए तो फिर बुरा क्यों देखा जाए। यों आपत्ति उठाने को मनुष्य को सदा ही उद्यत रहना चाहिए। व्यर्थ के लिए भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। इस समय तो मैं निश्चिन्त हूँ और सुखी हूँ।

३०-५-१९२४